पं० जवाहरलाल नेहरू

का

प्रामाणिक जीवन-चरित्र

लेखक—

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

प्रकाशक —

विजय पुस्तक भण्डार,

अर्जुन कार्यालय, श्रद्धानन्द बाज़ार, देहली।

द्वितीय संस्करण] सं० १९९३ वि० [मूल्य ॥)

मुद्रक —
अर्जुन इलेक्ट्रिक प्रिंटिंग प्रेस,
श्रद्धानन्द बाज़ार,
देहली

प्रकाशक :—
विजय पुस्तक भण्डार,
अर्जुन कार्यालय,
देहली

विषय-सूची



परिशिष्ट



धन्यवाद

इस संक्षिप्त जीवनी को पूरा करना अत्यन्त कठिन होता, यदि प० जवाहरलालजी मेरी प्रार्थना को स्वीकार करके अपने अंग्रेजी आत्मचरित की मूल कापी प्रदान करने की कृपा न करते। मेरे पास उससे उपयोग लेने के लिये समय बहुत कम था तो भी मैंने यथाशक्ति सहायता लेने का यत्न किया है। मैं सम्मानित पण्डितजी की इस कृपा के लिये अत्यन्त आभारी हूं।

—इन्द्र

दूसरे संस्करण की

❋ प्रस्तावना ❋

पहले सस्करण की सब कापियां हाथों हाथ बिक गई थीं। इधर देश ने फिर प० जवाहरलाल जी को ही राष्ट्रपति की गद्दी पर बिठाया है। १९३६ में प० जवाहरलाल जी ने बहुत से इतिहास का निर्माण किया है। इस कारण और भी आवश्यक हो गया कि उनकी जीवनी को परिवर्धित करके १९३६ के अन्त तक पहुचा दिया जाय। इस दूसरे सस्करण में देश के लाडले राष्ट्रपति के इतिहास को वर्तमान तक पहुचा दिया गया है।

—लेखक



क सम्बन्ध में कन्ध से कन्धा मिला कर यात्रा करते दृष्टिगोचर होते हैं। हम कह सकते हैं कि इंगलैंड के प्रधानमन्त्री विलियम पिट की भांति, जवाहरलाल अपने समय और पिता दोनों क प्रयत्नों का परिणाम हैं। जवाहरलाल को समझने के लिये दोनों पर दृष्टि डालनी होगी। दोनों की परीक्षा करनी होगी।

कहा जाता है कि महापुरुष समय क पुत्र भी होते हैं और पिता भी। वे समय की परिस्थियों क परिणाम होते हैं और समय पर असर भी डालते हैं। जवाहरलाल के बारे में इसी स्थापना को हम बढ़ा कर यह सकते हैं कि वह समय और पिता क प्रभावों का परिणाम है और उन्होंने समय और पिता दोनों पर ही प्रभाव डाला है।

पहले पिता क प्रभाव को लीजिये। जवाहरलालजी का पूर्व-जीवन पिता की छत्रच्छाया में व्यतीत हुआ। पं० मोतीलालजी क व्यक्तित्व को कौन नहीं जानता ? वह छा जाने वाला व्यक्तित्व था। यह नहीं हो सकता था कि वह अपने अड़ोसपड़ोस की किसी भी चीज़ को अपने प्रभाव से बचने दें। पुत्र को भी वह अपने बनाने की विशेष वस्तु समझते थे। बचपन में जवाहर-लाल को किसी स्कूल में नहीं भेजा गया। गवर्नेस और अध्यापक घर पर आकर ही उस रेशम के गदेलों में पलते हुये लाल को पढ़ाया करते थे। न कोई बाहर के दोस्त थे, और न साथी, न स्कूल की शरारतें थीं, और न बाहर का वातावरण। बचपन में

जवाहरलाल का घर ही सब कुछ था। वही स्कूल था और वही मोतीलाल नेहरू उसके प्रिन्सिपल थे। प्रिन्सिपल भी कोई साधारण न थे, बड़े दयालु परन्तु सख्त थे।" पुत्र पर प्रम की सदा वर्षा करते थे, परन्तु जब बिगड़ उठते थे तो चमड़ी उधेड़ कर रख देते थे। ऐसे प्रेमपूर्ण प्रिन्सिपल की देखरेख में जवाहर-लाल की बाल शिक्षा हुई।

युवावस्था प्रारम्भ होने से पूर्व ही पं० मोतीलालजी अपने पुत्र को लेकर विलायत गये और वहां हैरो के प्रसिद्ध स्कूल में उसे भर्ती करा दिया। इसके पश्चात् जवाहरलाल की सारी शिक्षा विलायत में हुई और वह भी लगभग प० मोतीलालजी के पूरे नियन्त्रण मे हुई।

इस सम्पूर्ण परिस्थिति के निर्माता प० जवाहरलालजी क पिता थे। जवाहरलालजी के व्यक्तित्व की बहुत-सी विशेषतायें इस परिस्थिति के ही फल हैं। उनकी तबीयत में अकेलापन है। वह सब में रह कर भी दिमाग़ी तौर पर अकेले रह सकते हैं। यह प्रारम्भिक शिक्षा के अकेलेपन का ही परिणाम है। इतना अकेलापन होते हुये भी वह पूरे नियन्त्रण में रह सकते हैं। विचारों में इतना भेद होते हुये भी वह १६ वर्ष से महात्मा गांधी और कांग्रेस के नियन्त्रण में रहे हैं, यह उसी प्रारम्भिक जीवन की शिक्षा का परिणाम है। जो मनुष्य युवावस्था तक प० मोती-

लाल जैसे कठोर नियन्त्रक के नियन्त्रण में रह चुका हो, उस लिये शेष सब नियन्त्रणों का सहना मजाक है।

इंग्लैंड की शिक्षा ने पं० जवाहरलाल जी को दो वस्तुयें दी हैं। एक तो विचारों में स्पष्टता, दूसरे अंग्रेजों के प्रति विद्रोह के भाव। यूरोप की शिक्षा मनुष्य को स्वाधीन और साहसपूर्ण विचार करने के योग्य बना देती है। स्वतन्त्र देश की शिक्षा में यह विशेषता तो होनी ही चाहिये कि वह मनुष्य को स्वतन्त्र चिन्तन के योग्य बनाये। गुलाम देश का वातावरण गुलामी से इतना पूर्ण हो जाता है कि मनुष्य की स्वाधीनतापूर्वक सोचने की शक्ति जाती रहती है। जवाहरलालजी की साहसपूर्ण स्वाधीन चिन्तन शैली पर यूरोपियन शिक्षा का गहरा प्रभाव है।

दूसरी चीज जो जवाहरलाल जी ने इंग्लैंड के चिर निवास के दिनों में प्राप्त की, वह यह थी कि उनके हृदय में अंग्रेजों की साम्राज्य-मद से उन्मत्त मनोवृत्ति के प्रति विद्रोह का भाव पैदा हो गया। उन्होंने अंग्रेजों को बहुत पास से, उनके नंगे रूप को देखा है और उस उपेक्षा और तिरस्कार का अनुभव किया है जो अंग्रेज लोग भारतवासियों के प्रति रखते हैं। पं० मोतीलाल का पुत्र भला उपेक्षा और तिरस्कार को कैसे सह सकता था? इंग्लैंड में रहते हुये ही जवाहरलाल जी के हृदय में अंग्रेजों की अभिमानी

मनोवृत्ति के प्रति ऐसा विद्रोह पैदा हो गया कि वह भारत में आकर भी मिट न सका, प्रत्युत और प्रचंड हो गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प० जवाहरलाल जी क चरित्र की बहुत सी विशेषतायें उनके प्रारम्भिक शिक्षण का परिणाम हैं, और वह प्रारम्भिक शिक्षण उनके पिता की बनाई हुई परिस्थितियों का परिणाम था।

पिता नेहरू की पुत्र नेहरू को सीधी देन भी कुछ कम नहीं। मानी स्वभाव, अटूट साहस, 'नेतृत्व और निर्भयता से सब गुण जवाहरलालजी को अपने पिता से ही प्राप्त हुए हैं। (पिता ने जिस जवाहरलाल को तैयार किया, वह एक कोट, सूट में विभूषित, विलासिता की सम्पूर्ण सामग्री से पला हुआ, बिलकुल अपटूडेट बैरिस्टर था। परन्तु समय को किसी और ही जवाहरलाल की ज़रूरत थी। उसने अपने हथौड़े से ठोक-पीट कर अपटूडेट बैरिस्टर को खद्दरधारी विद्रोही बना दिया) जल का समूह तो इकट्ठा हो ही चुका था, समय ने उसे नया मार्ग दे दिया, जिसमें होकर वह जल का समूह बड़े वेग से बह चला। १६१६ से प्रारम्भ होने वाली घटनाओं ने भारत के वातावरण को विकम्पित कर दिया। सारे वायुमण्डल में मानो एक बिजली सी दौड़ गई, जिस का जवाहरलालजी पर भी असर हुआ।

इस प्रकार पिता और समय ने जवाहरलाल जी को बनाया —और, साथ ही हम यह भी कह सकते हैं कि जवाहरलाल जी ने पिता और समय दोनों पर प्रभाव डाला। कौन नहीं जानता कि पं० मोतीलाल जी के प्रचण्ड व्यक्तित्व के प्रवाह पर जवाहरलाल जी का गहरा असर था ? इनके जीवन के अन्तिम १५ वर्षों में, उस प्रवाह की दिशा का निश्चय प्रायः जवाहरलालजी के मानसिक झुकाव से होता था। १९१६ में मोतीलालजी नरमदल के कांग्रेसी थे। जवाहरलालजी के कार्य क्षेत्र में आने के साथ मोतीलालजी का राजनीति का रंग पलटने लगा। पुत्र की भावनाओं और इच्छाओं का अव्यक्त प्रभाव पिता पर पड़ने लगा। समय के साथ-साथ वह प्रभाव बढ़ता गया, यहाँ तक कि अन्तिम दिनों में मोतीलाल जी और जवाहरलाल जी का मार्ग प्रायः एक हो गया था।

अपने समय पर जवाहरलालजी जो प्रभाव डाल रहे हैं, वह आँखों के सामने है। धीरे २ वह कांग्रेस को एक विशेष दिशा की ओर ले जा रहे हैं। बहुत से लोग उस दिशा को पसन्द नहीं करते, परन्तु फिर भी न टलने वाले भाग्य की तरह जवाहरलाल का व्यक्तित्व कांग्रेस पर अपनी छाप लगा रहा है। कोई चाहे या न चाहे, यह तो मानना ही पड़ेगा कि निकट भविष्य में कुछ समय के लिये देश को जवाहरलालजी का नेतृत्व स्वीकार करना ही पड़ेगा।

जवाहरलाल जी के विचारों और जीवन के विकास की कहानी सुनाने का यह सर्वथा उचित समय है। मेरे सौभाग्य से मुझे निर्वाचित राष्ट्रपति का जीवन चरित्र लिखने की ऐसी उत्तम सामिग्री प्राप्त हो गई, जिस के बिना यह प्रयास कभी सफल न होता। यह जीवनी केवल कहानी नहीं है, यह एक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी है।

—इन्द्र



(१)

जन्म

नेहरूओं के पूर्व पुरुष, २०० से कुछ अधिक वर्ष हुए, काश्मीर में रहते थे। मुगलों के राज्यकाल में आजीविका की तलाश में वे दिल्ली पहुंचे। काश्मीर के ब्राह्मण सदा से ही प्रतिभासम्पन्न और काम काज में अच्छे समझे जाते रहे हैं। मुगलों के दरबार में भी उन्हें गुजारे योग्य वृत्ति मिलने में देर न लगी। बादशाह फर्रुखसियर के जमाने में प० राजकौल शाही अध्यापक की हैसियत से राजधानी में रहते थे। राज दरबार में उनका अच्छा मान था। पं० राजकौल का परिवार कुछ समय

दिल्ली में फूलता फलता रहा। इसी वंश में पं० गंगाधर उत्पन्न हुए, जो दिल्ली के कोतवाल थे।

नेहरू परिवार का दिल्ली से सम्बन्ध उस घटना के कारण टूटा, जिसे सन् सत्तावन का विद्रोह कहा जाता है। नाम मात्र का बादशाह बहादुरशाह पहले सिपाहियों के जोश का शिकार बना और फिर अंग्रेजों के क्रोध का शिकार बनकर दिल्ली से निर्वासित कर दिया गया। पं० जवाहरलाल के दादा पं० गङ्गाधर जी को भी उसी जल प्रवाह के साथ दिल्ली से बह जाना पड़ा।

पं० गङ्गाधर जब दिल्ली से जान बचाकर भागे, तब उनके साथ उनकी छोटी बहिन और दो लड़के थे। पं० मोतीलाल जी अभी पैदा नहीं हुये थे। अकस्मात् यह परिवार गोरों के हाथ पड़ गया। पं० गङ्गाधर की बहिन बहुत गोरी और सुन्दर थी। गोरों ने समझा कि यह लोग किसी मेम को भगाये लिये जा रहे हैं। भाग्यवश दोनों लड़के थोड़ी बहुत अंग्रेजी जानते थे, उन्होंने गोरों को असली बात समझा दी। अन्यथा सारा परिवार उन नर पशुओं की गोली का शिकार हो जाता तो कोई आश्चर्य नहीं।

परिवार कुछ दिनों तक आगरा में रहा। सन् १८६१ के मई मास की ६ तारीख के दिन पं० मोतीलाल जी का जन्म हुआ। मोतीलालजी के पिता उनके जन्म से दो मास पहले ही मर गये

थ, इस कारण उस होनहार बालक का पालन-पोषण और शिक्षण माता श्री जियो बीबी और दोनों बड़े भाइयों की देखरेख में हुआ। दोनों बड़े भाइयों के नाम नन्दराम और बन्सीधर थे।

कहा जाता है कि पहले यह परिवार दरिया कौल कहलाता था, परन्तु दिल्ली में चांदनीचौक की नहर के किनारे रहने के कारण नहरू नाम से पुकारा जाने लगा।

मोतीलालजी अपने परिवार में सब से छोटे और लाडले बच्चे थे। बड़े होनहार चचल और तीव्रबुद्धि थे, परन्तु स्कूल में पढ़ने की ओर उनका ध्यान नहीं था। वह अधिक समय खेल-कूद और शरारतों में गुजारा करते थे। नटखटपन के कामों मे वह अपनी मण्डली के सरदार समझे जाते थे। सीधे-सादे लड़कों और अध्यापकों से छेड़खानी करना और उन्हें बनाना मोतीलालजी को बहुत प्रिय था। हर एक शरारत में आगे रहते थे। अगुआ बनकर रहना उनके स्वभाव का अङ्ग था। शरीर के खूब हृष्टपुष्ट और कुश्ती के शौकीन थ। इस कारण शरारत के परिणामों से नहीं डरते थे। जो दिल में आता कर डालते, फिर क्या होगा, इस आशङ्का से घबराते नहीं थे।

इतना होते हुये भी पढने में बुरे नहीं थे। जो एक बार पढ लेते, उसे अपना बना लेते। पहले फारसी और फिर अंग्रेजी देने वाले अध्यापक उनकी धारणा शक्ति पर

मोहित रहते थे। या तो पढ़ते नहीं थे और जब पढ़ते थे तो सारी कसर निकाल लेते थे। इस प्रकार विद्यार्थी काल में मोतीलालजी नटखट, ज़हीन, तेज़ और होनहार लड़के समझे जाते थे।

इस प्रकार शिक्षा की नदी में क्रमती झामती मोतीलालजी की किश्ती बी० ए० के किनारे के पास पहुंच गई, परन्तु वहां जाकर डगमगा गई। खेलकूद में अधिक समय व्यतीत करने के कारण मोतीलालजी डरते थे कि पास न होंगे, इसलिये पहले तो इम्तिहान की फीस देने से ही इन्कार कर दिया। इससे मोतीलालजी के प्रोफेसर को बड़ा दुख हुआ, क्योंकि वह लड़के से प्यार करते थे। प्रोफेसर ने नन्दलालजी को लिखा कि मोतीलाल ज़रूर पास होगा, उसे परीक्षा में बैठने के लिये मजबूर करो। फीस दाखिल की गई और मोतीलाल ने पहला पर्चा कर दिया, परन्तु फिर दिल उचाट हो गया और हज़रत ने परीक्षा के शेष दिन ताजमहल की सैर में व्यतीत किये। बी० ए० की परीक्षा रह गई।

कुछ वर्ष पीछे मोतीलालजी वकालत की परीक्षा में बैठे और प्रथम रहे और स्वर्णपदक प्राप्त कर लिया।

उस समय उनके विचारों में और रहन-सहन में दो विशेषतायें थीं। उनके विचारों में धार्मिकता का प्रवेश नहीं था। वह १९वीं शताब्दी के चालू सिद्धान्त-हेतुवाद या बुद्धिवाद के मानने

वाले थे। योरोप उस समय (Agnosticism) के प्रवाह में वह रहा था। मोतीलालजी उसी के अनुयायी थे और धार्मिकता का मजाक किया करते थे। उनके रहन सहन में अंग्रेजीपन की गहरी बू थी। वह योरोपियन ढङ्ग को पसन्द करते थे। यद्यपि भारत में रहने वाले अंग्रेजों की अकड़फू से वह बहुत जलते थे, और उसे नहीं सह सकते थे, परन्तु रहन-सहन की पाश्चात्य शैली के वह भक्त थे।

मोतीलालजी के सब से बड़े भाई नन्दलालजी पहले जयपुरान्तर्गत खेतड़ी नामक रियासत में नौकर थे। उनके जीवन का एक बड़ा भाग वहीं व्यतीत हुआ। उन्हें मोतीलालजी पिता की तरह मानते थे। खेतड़ी से आकर नन्दलालजी हाईकोर्ट में वकालत करने लगे थे। जब हाईकोर्ट आगरे में था, तब वह लोग आगरे में रहते थे, परन्तु जब हाइकोर्ट उठकर इलाहाबाद चला गया, तब नन्दलालजी भी वहीं पहुच गये। तब से नहरू परिवार इलाहाबाद का निवासी बन गया।

मोतीलालजी ने कानपुर में वकालत की उम्मीदवारी आरम्भ की। तेज तो थे ही, अपने पेशे में एक दम चमक उठे। उम्मीदवारी के वर्ष कानपुर मे बिना कर आप इलाहाबाद चले गये, और अपने भाई नन्दलालजी के साथ मिल कर जूनियर के तौर पर विकालत करने लगे। नन्दलालजी की विकालत भी अच्छी चलती थी। मोतीलालजी को होनहार प्रारम्भ करने का अव-

सब सीख गया। यह उनकी आदत थी कि जिस काम में लगते पूरे जोर से लग जाते थे। किसी सतह पर रहना उन्हें पसन्द नहीं था। वकालत में लगे तो ऐसी मेहनत की कि शेष सब कुछ भुला दिया। इधर इलाहाबाद आने के एक वर्ष बाद ही नन्दलाल जी का देहान्त हो गया। नन्दलालजी को मोतीलालजी पिता की तरह मानते थे। भाई की मृत्यु से आप बहुत दुखित हुये। जो भारी कर्तव्य आ पड़ा था, वह मामूली आसान काम नहीं था। सारे परिवार का बोझ युवक मोतीलालजी के कन्धों पर आ पड़ा, परन्तु वह कन्धे कमजोर भी नहीं थे। मोतीलालजी सब कुछ भुला कर कमाई में लग गये।

मोतीलालजी ने विकालत में कमाया और जी खोलकर कमाया। पुराने पुराने वकीलों को कुछ ही वर्षों में मात करके आप इलाहाबाद के मूर्धन्य वकील बन गये। लक्ष्मी ने आप पर जी खोल कर कृपा की, और साथ ही यश और मान भी प्राप्त हुए और उन्हीं के साथ प्राप्त हुआ एक अनमोल जवाहर।

१४ नवम्बर १८८९ को मोतीलालजी के घर में जवाहरलाल नाम के बालक ने जन्म लिया।



(२)

शिक्षा

जवाहरलाल के प्रारम्भिक जीवन की यह विशेषता थी कि उसके चलने के लिये मार्ग पहले से बन चुका था। वृक्षों की छाया से शीतल राजमार्ग पहले से तैयार हो चुका था, बालक जवाहरलाल को तो उस पर कदम उठाते हुये चले जाना था। मोतीलालजी का भाग्य-सूर्य उदयोन्मुख था। धन और मान बरस रहे थ। जवाहरलाल का बाल्यकाल रेशम के गदेलों और फूलों की सेज पर व्यतीत हुआ। मोतीलालजी उन सारथियों में से न थे जो घोड़ों की लगाम को ढीले हाथों से पकड़ते हों। वह सब पर शासन करत थे, उन पर हावी होकर

रहते थे, तब बच्चा ही उनके व्यक्तित्व के प्रभाव से कैसे बच जाता। उन्होंने अपने एक मात्र पुत्र को, अपनी संरक्षा में, अपने बनाये हुये वातावरण में ही पाल-पोस कर बड़ा किया। इसके दो फल हुये। जवाहरलाल का बालपन बाहिर के हवा के झकोरों से प्रायः सुरक्षित था और घटना रहित था।

घटना रहित का यह अभिप्राय नहीं कि उसमें कहने योग्य घटना हुई ही नहीं। संसार में सुगन्धित पुष्प में कांटे हुआ ही करते हैं। सुखी से सुखी जीवन में भी दुख के क्षण रहते हैं। इसी प्रकार जवाहरलाल के सुखावेष्टित बाल्यकाल में भी विक्षोभ के क्षण आते रहते थे।

एक बार की बात है। तब जवाहरलाल की आयु छः या सात साल की होगी। बालक ने एक दिन अपने पिता की मेज़ पर दो फौण्टेन पैन पड़े हुये देखे तो विचार किया कि पिता दो पैन क्या करेंगे, एक फालतू है, उस पर पुत्र का कब्ज़ा होना चाहिये। एक पैन उठाकर जेब में डाल ली। जब मोतीलाल जी ने एक पैन गायब देखा तो ज़ोरदार तलाश हुई, चोर पकड़ा गया और मोतीलाल के सामने हाज़िर हुआ। मोतीलालजी को इतना क्रोध आया कि उन्होंने मारते मारते लड़के को घायल कर दिया। घायल होने पर जवाहरलाल अपनी माँ की गोद में इलाज और विश्राम के लिये भेजा गया। बहुत दिनों की मरहम पट्टी के बाद उसके घाव ठीक हुये।

माता की गोद बालक जवाहरलाल के लिये मानो शीतल पेड़ की छाया थी, और उसकी बालक को बहुत कुछ आवश्यकता भी थी, क्योंकि पिता की आँखें उसके लिये सूर्य के तीव्र आतप के सदृश थीं। जवाहरलाल बचपन से ही अपने पिता का बड़ा आदर करता था, उसे मनुष्यता का आदर्श समझता था, परन्तु साथ ही उससे डरता था, आँखों पर हाथ की ओट किये बिना उसकी ओर नहीं देख सकता था, और कभी-कभी उसकी तेज़ी से परेशान हो जाता था, उस समय माता की गोद की शीतलता मे ही आश्रय मिलता था। जवाहरलाल को अपनी माता, बड़ी ही सुन्दर अत्यन्त मधुर और दया की मूर्ति दिखाई देती थी।

बचपन में जवाहरलाल को स्कूल में पढ़ने के लिये नहीं भेजा गया। घर पर ही पढ़ाई होती थी। अच्छे योग्य अध्यापक और शिक्षिकाओं की देख रख मे विलायती ढंग पर उस की शिक्षा हुई। बाहिर के समाज से बालक का सम्पर्क बहुत ही कम होता था।

११ वर्ष की उम्र मे एक थ्यासोफ़िस्ट अध्यापक, जिसका नाम मि० एफ़० टी० ब्रुक्स था, जवाहरलाल को पढ़ाने के लिये नियत किया गया। प० मोतीलालजी धार्मिक दृष्टि से नास्तिक ही थे। वह धार्मिक विषयों में उदासीन रहा करते थे। यदि कभी धर्म की चर्चा आती भी तो उसका मज़ाक ही होता [illegible] साहिब बड़े कट्टर थ्यासोफ़िस्ट थे। उन्हों

ने धनी बालक पर हाथ फेरना शुरू किया, और शीघ्र ही थ्यासोफ़िस्ट बना लिया। १३ साल की आयु में थ्यासोफ़िकल सोसायटी की अध्यक्ष मिसेज़ बेसेण्ट के हाथों से जवाहरलाल का अभिषेक-संस्कार हुआ।

इस प्रकार भारतवर्ष की शिक्षा समाप्त कर १६०५ में जवाहरलाल को लेकर पं० मोतीलालजी इग्लैंड के लिये रवाना हो गये।

'हैरो' का स्कूल इग्लैंड क प्रसिद्ध शिक्षणालयों में से है। उसमें धनी श्रेणी क बालक शिक्षा पाते हैं। जवाहरलाल को उसमें दाखिल किया गया। दो वर्ष तक उसमें शिक्षा पाने के पश्चात् १६०७ में, युवक, कैम्ब्रिज के प्रसिद्ध विश्वविद्यालय में चला गया। हैरो का वातावरण कुछ संकुचितसा था, परन्तु कैम्ब्रिज में जाकर इग्लैंड क नैतिक जीवन का अनुभव करने का अवसर मिला। १६१० में जवाहरलालजी ने कैम्ब्रिज से बी० ए० पास कर लिया।

इन ५ वर्षों म जवाहरलाल के भावी जीवन की असली बुनियादें रक्खी गयीं। पुस्तक—शिक्षा तो एक गौण वस्तु थी। जवाहरलाल न उसम सफलता भी साधारण ही प्राप्त की। न कभी अनुत्तीर्ण हुए और न कभी पहली श्रेणी में आदर सहित उत्तीर्ण हुए। इस सम्बन्ध में पुत्र का जीवन पिता से बहुत भिन्न था। पिता बी० ए० में उत्तीर्ण न हो सका और वकालत में आदर के साथ पहला नम्बर प्राप्त किया। पुत्र न कभी अनुत्तीर्ण

हुआ और न कभी पहले नम्बर पर रहा। वह किस्मत का धनी था, किस्मत ने कभी उसका साथ न छोडा। धीरे धीरे परन्तु निश्चय के साथ जवाहरलाल का कदम जीवन यात्रा में आगे बढता गया। इस सम्पूर्ण यात्रा मे, उनकी अधिष्ठात्री देवता और पथदर्शक उनके पिता पं० मोतीलालजी रहे।

इंग्लैंड की शिक्षा ने जवाहरलाल के चरित्र पर दो प्रभाव अंकित किये। यह मानी हुई बात है कि भारत की वर्तमान शिक्षा मनुष्य को दिमागी नियन्त्रण की शिक्षा नहीं देती। इग्लैंड के निवासियों की सब से बडी विशेषता यह है कि उनके जीवनों में राष्ट्रीय नियन्त्रण कूट कूट कर भरा हुआ है। देखने में उनके जीवन बडे आज़ाद प्रतीत होते हैं, परन्तु उनके चरित्रों में एक कठोर नियन्त्रण सन्निहित है, जो इग्लैंड के राष्ट्रीय जीवन को फौलाद की तरह दृढ बनाता है। उस नियन्त्रण का एक बडा भाग दिमाग से सम्बन्ध रखता है। वह हरेक वस्तु को स्पष्टता के साथ और उसके असली रूप में देखने का यत्न करते हैं। हमारी शिक्षाप्रणाली हमें अनिश्चित रीति से विचारना और अनियन्त्रित रीति से काम करना सिखाती है। जवाहरलाल के जीवन में और चिन्तन में जो एक नियन्त्रण और निश्चितताकी झलक पाई जाती है, वह इग्लैंडकी शिक्षा का फल है।

इग्लैंड में इतने समय तक रह कर अंग्रेज़ों को समीप से ... ने ... प्रभाव, जो जवाहरलाल के हृदय पर पडा, यह

था कि दूरी के कारण अपने से ऊंची स्थिति रखने वालों के लिये जो एक निर्मूल आदरभाव पैदा हो जाता है, वह उसके हृदय से निकल गया। उसने अंग्रेज़ की भलाई और बुराई को पास से और बारीकी से देखा है। उसकी नजरों में अंग्रेज़ बुर्के से ढका हुआ देवता नहीं है, वह नङ्गा राजसी प्रवृत्तियों वाला मनुष्य है। ऐसा साधारण मनुष्य भारतवासियों को जिस तिरस्कार की दृष्टि से देखता है, उसका जवाहरलाल ने ७ वर्ष तक रात दिन अनुभव किया है। उस तिरस्कार के अव्यक्त अनुभव ने जवाहरलाल के हृदय में इङ्गलैंड और अंग्रेज़ के प्रति विद्रोह का स्थायी भाव पैदा कर दिया है। यह इङ्गलैंड में शिक्षा ग्रहण करने का दूसरा फल है।

कैम्ब्रिज में शिक्षा पूरी करने के दो वर्ष बाद जवाहरलाल ने बैरिस्टरी की परीक्षा में सफलता प्राप्त कर ली। इङ्गलैंड में ७ वर्ष तक रह कर १९१२ में वह अपनी मातृभूमि में वापिस आ गये।

इन वर्षों में जवाहरलाल ने यद्यपि भारत की राजनीति में सीधा कोई हिस्सा नहीं लिया, परन्तु छात्र की हैसियत से भारतीय राजनीति का अध्ययन निरन्तर जारी रहा। उन दिनों भारत की राजनीति में गोखले और तिलक का, नर्म और गर्म का सङ्घर्ष चल रहा था, उस सङ्घर्ष में जवाहरलाल की सहानुभूति पं० बालगङ्गाधर तिलक के साथ थी।



(३)

राजनीति मे प्रवेश

घर लौट कर जवाहरलालजी का वही रईसी ढंग का नीरस जीवन व्यतीत होने लगा, जो प्राय विलायत से बैरिस्टरी पास करके आने वाले भारतवासियों का हुआ करता है। आनन्द भवन मे किसी चीज़ की कमी नहीं थी। पं० मोतीलालजी पर लक्ष्मी बरस रही थी। आनन्द-भवन में आमोद प्रमोद की सब सामग्री विद्यमान थी। कमाई की भी बहुत चिन्ता नहीं थी, क्योंकि कमाने को पिता ही बहुत थे। जवाहरलालजी का समय कचहरी और आमोद प्रमोद में घटने लगा। इस दिनचर्या को तोडने के लिये कभी कभी शिकार को जाते थे तो वहां जवाहरलालजी का प्रधान कार्य

जङ्गलों में भ्रमण का आनन्द लेना ही रहता था। शिकार को जान से मारने में उनका जी बहुत कम लगता था।

उस समय भारत की राजनीति में दो दल थे। एक माडरेट या नरम। दूसरा एक्स्ट्रीमिस्ट या गर्म। कमाऊ वकील, सफल डाक्टर और शिक्षित धनवान् यदि सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करना पसन्द करते थे तो प्राय नरम दल में शामिल होकर कांग्रेसी बन जाते थे। पं० मोतीलालजी भी उस समय के प्रचलित फैशन के अनुसार नरम दल के कांग्रेसी थे। वह एक प्रान्तिक राजनैतिक कान्फ्रेन्स में अध्यक्ष पद को भी ग्रहण कर चुके थे।

जब तक वकालत से फुर्सत न मिलती थी, और राजनीति केवल एक शौक की वस्तु थी, तबतक तो मोतीलालजी माडरेट बनने से सन्तुष्ट रहे, मगर वह राजनीति उनके स्वभाव के अनुकूल नहीं थी। जिस आदमी को झुकना अपराध मालूम होता है, क्या वह चिरकाल तक भिक्षावृत्ति की राजनीति से सन्तुष्ट रह सकता है। आत्मसम्मान और अधिकारों की याचना साथ साथ नहीं चल सकते। कांग्रेस की पुरानी राजनीति में मोतीलालजी तभी तक खपते रहे जब तक उन्होंने राजनीति में गम्भीरता से प्रवेश नहीं किया।

मोतीलालजी ने राजनीति में गम्भीरता से तब प्रवेश किया जब कांग्रेस के निर्बल हो जाने पर होमरूल लीग ने जोर पकड़ा। उन

दिनों जवाहरलालजी भारत में आ चुके थे। होमरूल के आन्दोलन के प्रसङ्ग में मिसेज़ बेसेन्ट कुछ साथियों के साथ नज़रबन्द की गई। इस समाचार ने देश में बिजली सी दौड़ा दी। उस बिजली का मोतीलालजी पर भी असर हुआ और इलाहाबाद में जो होमरूल लीग कायम हुई, मोतीलालजी उसके सभापति चुने गये।

जवाहरलालजी की मानसिक दशा उस समय यह थी कि उनका दिमाग़ और दिल प्रचलित राजनीति से सर्वथा असन्तुष्ट थे। केवल शब्दों का आन्दोलन उन्हें पानी का भङ्गुर बुदबुदा सा प्रतीत होता था। होमरूल आन्दोलन में उन्हें कुछ जान प्रतीत होती थी, परन्तु वहां भी शब्दों की ही प्रधानता थी। कहना तो ठीक है परन्तु यदि कहना न माना जाय तो ? इसका उत्तर उस समय की राजनीति नहीं दे सक्ती थी। राजनीति की ओर जवाहरलालजी की अभिरुचि बढ़ रही थी, परन्तु बांकीपुर और लखनऊ के कांग्रेस अधिवेशनों में सम्मिलित होकर भी उनका दिल नहीं जमा। यदि कांग्रेस की बात न मानी जाय, तो क्या किया जाय, इस प्रश्न का उत्तर उस समय की राजनीति के पास नहीं था। इस प्रश्न का उत्तर न कांग्रेस के अधिवेशन दे सके और न होमरूल लीग। इस कारण जवाहरलालजी का मन उस समय तक राजनीति के अंधेरे आकाश में प्रकाश की रेखा को तलाश कर रहा था।

१६१६ में, वसन्तपञ्चमी के दिन, दिल्ली में कमलादेवी से जवाहरलालजी का शुभ विवाह सम्पन्न हुआ। विवाह के पश्चात् जवाहर और कमला की युगल जोड़ी ने, जीवन के वसन्त के दिनों को बिताने के लिये पृथ्वी के स्वर्ग काश्मीर की यात्रा की और कुछ मास तक वहां के सुन्दर दृश्यों का आनन्द लिया। काश्मीर नेहरुओं की जन्म भूमि है, उसका आकर्षण भी असाधारण है। वहां पहुंच कर छूटना आसान नहीं। उन हरी-भरी घाटियों में गज़ब की मनमोहिनी शक्ति है। जवाहरलालजी पर भी उस मोहिनी शक्ति का असर हुआ और काश्मीर छोड़ते हुए आपने सङ्कल्प किया कि फिर यहां आकर आमोद प्रमोद और भ्रमण का आनन्द लेंगे। परन्तु "हमरे मन कछु और है, विधना के मन और" उस दिन से आज तक आप काश्मीर नहीं जा सके। मातृ-भूमि की चिन्ता ने ऐसा घेरा कि जेल की कोठरी को ही काश्मीर की घाटी मान लेना पड़ा। वह सङ्कल्प अधूरा ही रह गया। इसी बीच में वह काश्मीर की यात्रा का मधुर साथी इस संसार से प्रयाण कर गया, जिसने पहली यात्रा को इतना प्यारा बनाया था। आज जवाहरलाल अधूरा रह गया और काश्मीर यात्रा की साध जेलयात्रा की साध में विलीन हो गई। कौन कह सकता है कि अब जवाहरलालजी काश्मीर यात्रा की अपनी इच्छा को कब पूरा कर सकेंगे और जब पूरा करेंगे तब वह यात्रा इतनी मनमोहिनी होगी या नहीं ?

इधर भारत की राजनीति का चक्र १६१८ के अन्त में कुछ वेग के साथ चलने लगा। योरोप के महायुद्ध की समाप्ति पर भारतवर्ष का वातावरण आशा से भर गया था। भारतवर्ष ने युद्ध में इङ्गलैंड की जी खोल कर मदद की थी, और उसके बदले इग्लैंड के राजनीतिज्ञों ने भी बहुत आशा दिलाई थी। आशा के शब्द यद्यपि अस्पष्ट थे, तो भी निश्चित से सुनाई दिये। उधर युद्ध के अन्त मे अमरीका के राष्ट्रपति डा० विलसन का आत्म-निर्णय सम्बन्धी सिद्धान्त योरप के वातावरण मे गूज रहा था। भारतवासियों के सरल हृदयों ने समझा कि शायद मोक्ष का समय समीप आगया। अब इंग्लैंड भारत के सिर पर स्वराज्य के फूल अवश्य बरसायेगा, परन्तु समय आने पर भारतवासियों को आश्चर्य से प्रतीत हुआ कि उन पर फूलों की जगह पत्थर बरसाने की तैयारी हो रही है। स्वराज्य तो कहीं अस्ताचल के पीछे जा छुपा, और रौलट एक्ट नाम से पुकारे जाने वाली आंधी आकाश में मडराने लगी। देश भर में उन काले प्रस्तावित कानूनों के विरुद्ध आंदोलन मचा, पर कोई फल न हुआ। सरकार उन बिलों को कानून बनाने पर तुली हुई थी। वह बना कर रही।

१६१६ के प्रारम्भ में महात्माजी बीमार हो गये थे। रोगशय्या पर से उन्होंने वायसराय को एक पत्र लिखा, जिस में उससे प्रार्थना की कि वह काले कानूनों को प्रमाणित न करे। अंग्रेज जाति उस समय विजय के मद मे मस्त थी।

इलाहाबाद के पायोनियर पत्र ने भारतवासियों के इस आंदोलन पर टिप्पणी करते हुये लिखा था कि यह ब्रिटिश सिंह, जो सत्ता के सब से घोर युद्ध में से विजयी होकर निकला है, क्या हिन्दुस्तानियों की गीदड़ भभकियों से डर सकता है। धारा सराय ने कानून को प्रमाणित कर दिया। तब महात्मा गांधी ने भारत के विस्तृत क्षेत्र में उस हथियार को पेश किया, जिस द्वारा वह दक्षिण अफ्रीका के परिमित क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर चुके थे। उन्होंने देश के सामने यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि क्योंकि सरकार ने प्रजा की इच्छाओं का विघात किया है और नये कानून अन्यायपूर्ण हैं, इस कारण प्रजा उन कानूनों को अंगीकार न करे, और उन्हें तथा अन्य अन्यायपूर्ण कानूनों को मानने से इन्कार कर दे। यदि इस कार्य के फलस्वरूप जेल या कोई अन्य दण्ड मिले तो उसे सहर्ष स्वीकार किया जाय।

महात्माजी के इस प्रस्ताव को पढ़ कर जवाहरलालजी की ऐसी दशा हुई कि मानो प्यासे को पानी मिल गया हो अब तक उन्हें भारत की राजनीति खोखली मालूम देती थी। महात्मा गांधी के सत्याग्रह को मैदान में आता देख कर उन्हें प्रतीत हुआ, कि जैसे खोखला स्थान भर गया। जिस शब्द की पुष्टि में कोई क्रिया नहीं, उस खोखले शब्द से तो मौन ही भला है। सत्याग्रह के प्रस्ताव और महात्माजी की घोषणा के दृढ़ शब्दों

ने जवाहरलालजी के हृदय को सान्त्वना सी दी। उन्होंने अनुभव किया कि इस राजनीति मे मैं भी हिस्सा ले सकता हू।

अनुभव तो कर लिया, परन्तु एक बहुत बडी दिक्कत थी। पं० मोतीलालजी ऊपर के व्यवहार में चाहे कितने खुरदरे थे, परन्तु हृदय में अपनी सन्तान से बहुत प्यार करते थे। उस समय जेल एक हौआ था। किसी भले आदमी के लिये जेल जाना मरने के बराबर था। मोतीलालजी को यह बात बडी भयानक और बेढगी मालूम होती थी कि उनका फूलों की सेज पर पला हुआ एकमात्र बेटा जेल चला जाय। जब उन्हें यह मालूम हुआ कि जवाहरलालजी सत्याग्रह में शामिल होने को तैयार हैं, तो वह आग बबूला हो गये और पुत्र को उस मार्ग पर जाने से रोकने पर तुल गये। जब मोतीलालजी ने देखा कि वह पुत्र को समझाने में सफल नहीं हुए तो उन्होंने महात्माजी को इलाहाबाद बुलाया, जिसका परिणाम यह हुआ कि महात्माजी ने जवाहरलालजी को सत्याग्रह में भाग न लेने की सलाह दी। जवाहरलालजी मान तो गये, पर दिल मे बहुत दुखी हुए।

उधर राजनीति के पर्दे पर दृश्यों का परिवर्तन शीघ्रता मे होने लगा। दिल्ली में ३० मार्च को, और सारे भारत मे १ सप्ताह पीछे सत्याग्रह का दिन मनाया गया। जनता के असयत जोश, और सरकार [illegible] के परस्पर संघर्ष का यह [illegible] हुआ कि [illegible]बाद, अमृतसर आदि में दगा,

पीट, गोली, हत्या और अन्त में मार्शल ला तक नौबत पहुची। पंजाब पर सब से भयानक आपत्ति आई। प्राय सारे प्रान्त में मार्शल ला घोषित कर दिया गया। इन घटनाओं से पहले तो सारा देश स्तब्ध सा हो गया, पर जब आहिस्ता आहिस्ता मार्शल ला हल्का होने लगा और पजाब की छाती पर से अन्धकार का पर्दा उठने लगा, तब ससार को मालूम हुआ कि अभागे प्रान्त की छाती का तो रोम रोम घायल पडा है। जिस भारतवासी के सीने के नीचे दिल था, वह घायल पजाब की मरहमपट्टी करने के लिये यथाशक्ति शीघ्रता से भागा। पीडितों की सेवा के काम में प० मदनमोहन मालवीय और स्वामी श्रद्धानन्दजी अग्रसर हुए। मार्शल ला के खूनी परिच्छेद की तहकीकात के लिये कांग्रेस की ओर से जो कमेटी बनी, उसमें प० मोतीलालजी और देशबन्धु चितरंजनदास मुख्य थे। प० जवाहरलालजी ने भी अपनी सेवाय अर्पित कीं, जो सहर्ष स्वीकार की गयीं। उन्हें देशबन्धुदास की सहायता करने का काम सौंपा गया। उसे उन्होंने इतनी योग्यता, तत्परता और परिश्रम से निभाया कि उसी समय से देश के नेताओं की नज़र उन पर जम गइ। वह नेताओं के लाडले बन गये। इस प्रकार जवाहरलालजी का भारत की राजनीति में प्रवेश हुआ।



(४)

गांव की गहराई में

इससे पूर्व कि हम जमनालालजी के राजनीतिक जीवन के दूसरे पड़ाव का वर्णन आरम्भ करें, दो अवांतर घटनाओं की चर्चा कर देना आवश्यक है।

उन दिनों उत्तरीय भारत में राष्ट्रीय समाचार पत्रों का अभाव-सा था। इलाहाबाद से पायोनियर और लीडर यह दो पत्र निकलते थे। पायोनियर कट्टर सरकारी पत्र था और लीडर के विचार माडरेट या नर्म थे। उसकी मौज होती तो कांग्रेस की किसी बात का समर्थन कर देता, अन्यथा कांग्रेस को लताड़ सुना देता। . ^^ में गर्मी पैदा होने पर प० मोतीलालजी

ने अनुभव किया कि एक राष्ट्रीय विचारों का दैनिक-पत्र होना ही चाहिये। इसी विचार से इलाहाबाद में एक लिमिटेड कम्पनी की स्थापना हुई, जिस की ओर से अंग्रेजी में दैनिक इण्डिपेण्डेण्ट पत्र का प्रारम्भ हुआ। उसके प्रबन्ध और सम्पादन में जवाहरलालजी का काफी हाथ था। पत्र जोशीले उत्साह का फल था। जो लोग पत्र चलाने के लिये इकट्ठे हुये, उनमें से किसी को भी पत्र सचालन का अनुभव नहीं था। सभी उस कला में नये थे। पत्र धूमधाम से निकला और जोर शोर से चला। उस के सम्पादक मि० सैयदहुसैन एक जोशीले लेखक थे। पत्र की नीति भी निर्भीक थी। थोडे ही दिनों में पत्र की धाक जम गई, परन्तु केवल लेखों से कोई दैनिक पत्र नहीं चल सकता। प्रबन्ध और सङ्गठन दैनिक पत्र के प्राण हैं। अनुभव-शून्यता के कारण इण्डिपेण्डेण्ट के सचालन में इन दोनों ही वस्तुओं का अभाव था। कुछ दिनों तक चमक दिखाकर पत्र बन्द हो गया और अपने पीछे एक वीर परन्तु अनियन्त्रित सिपाही की स्मृति छोड गया।

दूसरी घटना सरकार की जड-बुद्धिता का नमूना थी, परन्तु उसने जवाहरलाल जी की राजनीतिक प्रतिष्ठा के स्थापित करने में बडा काम किया। १९२० में जवाहरलालजी की माता और पत्नी रोगी हो गयीं। स्वास्थ्य-सुधार के लिये उन को लेकर वह मसूरी गये और सैवोय होटल में ठहरे। उन्हीं दिनों म सैवोय होटल में अफगानिस्तान के राजदूत ठहर हुये

थे। यह १९१९ के अफगान युद्ध के पीछे भारत सरकार से सुलह की बातचीत करने आये थे। जवाहरलालजी का अफ़-ग़ान मिशन की ओर विशेष ध्यान नहीं था। वह महीना भर तक उनसे मिले-जुले भी नहीं। एक दिन वहाँ के पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट साहिब तशरीफ लाये और जवाहरलालजी से स्थानीय सरकार की आज्ञा से यह आश्वासन मांगा कि वह अफगान मिशन के मेम्बरों से कोई वास्ता न रखेंगे। जवाहर-लालजी को यह आज्ञा सर्वथा अनुचित मालूम हुई और उन्होंने आश्वासन देने से इन्कार कर दिया। डिस्ट्रिक्ट मजि-स्ट्रेट ने भी जवाहरलालजी को समझाने का यत्न किया, परन्तु जब वह बराबर इन्कार करते रहे तो उन्हें स्थानीय सरकार की आज्ञा मिली कि वह २४ घण्टे के अन्दर देहरादून ज़िले को छोड़ दें। अभी सत्याग्रह जारी नहीं हुआ था, इस कारण जवाहरलालजी मसूरी में रोगी माता और पत्नी को छोड़ कर इलाहाबाद जाने के लिये बाधित हुए। यह घटना जब पत्रों मे छपी तो एक प्रमुख राजनीतिक की हैसियत से जवाहरलालजी की प्रतिष्ठा में वृद्धि का कारण बनी और साथ ही अफ़ग़ान मिशन के सदस्यों के दिल में उनके लिये प्रेम की भावना पैदा हो गई। पं० मोतीलालजी को इस घटना से बड़ा रंज हुआ और उन्होंने संयुक्त प्रान्त के गवर्नर सर हा ... को बड़ा तेज़ पत्र लिखा। पहले ने

अपनी ज़िद पर अड़ी रही, परन्तु पीछे से यह आर्डर सरकार की ओर से वापिस ले लिया गया। पं० मोतीलालजी ने सरकार को सूचना दी कि मैं अपने लड़के के साथ परिवार के स्वास्थ्य की दृष्टि से मसूरी जा रहा हूँ। इस पर सरकार ने यह प्रतिबन्ध उठा लिया।

इस वर्ष अवध के किसानों में भारी आन्दोलन पैदा हो रहा था। जो लोग देश की दशा को जानते हैं उन्हें मालूम है कि अवध के किसान भारत के दरिद्रतम प्राणी हैं। उनकी परिस्थिति मनुष्यों की भी नहीं। सरकार और ताल्लुकेदार इन दो भारी शिलाओं के नीचे आकर उनके शरीर की हड्डियें तक पिस रही हैं। ज़मीन अनाज पैदा करे, या न करे उनके पास खाने योग्य अन्न हो या न हो, लगान तो मिलना ही चाहिए। सीधी तरह न मिलेगा, तो ताल्लुकेदार के कारिन्दे उनके पेट में से निकाल लेंगे। किसानों की रक्षा के लिए जो थोड़े बहुत कानून पास हुये हैं, वह भी उस समय नहीं थे।

एक बाबा रामचन्द्र नाम का कार्यकर्ता था। उसने किसानों में खूब जागृति पैदा की। जून के महीने की गर्मी में लगभग २०० किसान प्रतापगढ़ के इलाके से लगभग ५० मील पैदल चलकर अपनी दु:खगाथा सुनाने के लिए इलाहाबाद आये और राजनीतिक नेताओं से फ़रयाद की। जवाहरलालजी मसूरी से प्रवासित होकर इलाहाबाद में अपने दिन व्यतीत कर रहे

थे। किसानों की कहानी से उनका हृदय द्रवित होगया और मखमल और रेशम के गद्दों में मां बाप के लाडचाव से पला हुआ युवक मौसम की कठोरता और गांव की कठिनाइयों की परवाह न करके किसानों के साथ चल दिया। रेल और पक्की सड़क से दूर, गांव की गहराई में उन महीनों में जवाहरलालजी ने कई सप्ताह व्यतीत किये। किसानों की निर्धन और दीन दशा देखकर उनका कोमल हृदय द्रवित हो गया। किसानों की यह दशा हो रही थी कि मार खायें, और रोने न पायें। उनके पेट में से खुर्च कर मालगुजारी निकाल ली जाती थी और जब शिकायत करें, तो पीटा जाता था। जिन प्रांतों में किसान ही जमीन क मालिक समझे जाते हैं, वहां फिर कुछ खैरियत है, क्योंकि किसान के पास चार दाने बच जाते हैं, परन्तु जहां जमींदारी पद्धति है, वहां तो उन बेचारों की मौत है। सरकार का पेट भरना चाहिये और जमीदार की रईसी भी चलनी चाहिए। यह सब किस के सिर पर? उस गरीब किसान के सिर पर, जो रात और दिन मेहनत करके दो समय योग्य भोजन नहीं पा सकता, न जिसके सर छुपाने को मिट्टी का झोंपड़ा है और न लज्जा ढकने को पूरा कपड़ा। गांव में जाकर अब जवाहरलालजी ने उनकी दशा को देखा तो उनका कोमल हृदय रो उठा। उन दृश्यों को देखकर बाकी यह स [illegible] प्रवृत्तियाँ, जो अभी तक केवल पुस्तकें पढ़ने

से उत्पन्न हुई थीं, मज़बूत हो गईं। पहले केवल विचार था, अब विश्वास पैदा होगया कि जब तक ग़रीब किसानों की दशा को नहीं सुधारा जाता, जबतक उनके परिश्रम का पूरा फल उन्हें नहीं मिलता, तबतक समाज की दशा नहीं सुधर सकती, और ससार मे शान्ति नहीं हो सकती। करोड़ों मनुष्य दिनरात परिश्रम करके भूख रहें और बीसियों मनुष्य बिना परिश्रम किये केवल रिवाज और कानून के ज़ोर पर मौज मारें, यह सरासर अन्याय है जिसका अन्त किये बिना मनुष्य जाति का कल्याण नहीं हो सकता। गांव की उस यात्रा ने जवाहरलालजी को कट्टर साम्यवादी बना दिया।

जिस मनुष्य ने बचपन से केवल शारीरिक सुख का ही अनुभव किया हो, जो केवल यही जानता हो कि किसी शारीरिक आवश्यकता को पूरा करने का उपाय पिता से कह देना या नौकर को आवाज दे देना है, जिसके मैले कपडे पैरिस से धुलकर आये हों और जिसे आनन्दभवन में रहने का अभ्यास हो, वह जून की कड़कती गर्मी में नगे सिर गांव में पैदल घूम सकेगा, यह आशा किसी को भी न थी। शायद जवाहरलालजी को स्वय भी यह आशा नहीं थी, परन्तु सब आश्चर्यित हुए क्योंकि जवाहरलालजी उस कड़ी परीक्षा में बड़ी सफलता से उत्तीर्ण हुए। आपने देहात का खूब चक्कर लगाया और किसानों को ढारस दिया। इससे पूर्व आप हिन्दु

स्तानी में व्याख्यान देने से बहुत घबराते थे। इंग्लैण्ड में इतने वर्षों तक रहने के कारण हिन्दुस्तानी भाषा पर इतना प्रभुत्व भी नहीं था और ज़बान ऐसी परदेसी सी प्रतीत होती थी, परन्तु किसान तो अंग्रेजी समझते ही नहीं थे और उनसे कुछ कहे बिना जवाहरलालजी से रहा नहीं गया, इसलिये लाचार होकर आपको हिन्दुस्तानी में व्याख्यान देने का अभ्यास डालना ही पड़ा।

किसानों को आपके जाने से बड़ा आश्वासन मिला। उन्हें मानों मसीहा मिल गया। वह अपने दुःख की कथायें लेकर दूर-दूर से आते और इलाहाबाद से आये हुए 'नेता' को सुना कर समझते थे कि "हमारे दुःखों का आधा इलाज" होगया।

वह आन्दोलन प्रतापगढ़ के इलाके से प्रारम्भ होकर शीघ्र ही रायबरेली, फ़ैज़ाबाद आदि के जिलों में फैल गया। किसान एक बार जो भड़के तो उन्हें रोकना कठिन हो गया। कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं ने आन्दोलन को ठीक रास्ते पर रखने का बहुत यत्न किया परन्तु इतना विस्तृत और गहरा असन्तोष सर्वथा शान्त कैसे रह सकता था। सरकार के साथ कई स्थानों पर आन्दोलनकारियों की टक्कर लग गई। जब कोई आन्दोलन बहुत व्यापी हो जाय तो सरकार को ऐसी टक्कर से बड़ा सन्तोष मिलता है। झगड़ा पैदा होने पर आंदोलनकारी सरकार

के हाथ में खेल जाते हैं। आन्दोलनकारियों की अनुभव शून्यता ने उन्हें सरकार के हाथों में शिकार की तरह दे दिया। छोटे छोटे निमित्त से झगड़ा हो गया, जिस पर पुलिस ने गोली चला दी। रायबरेली में जो गोली चली, उसमें बहुत से किसान मारे गये और उनसे भी अधिक ज़ख्मी हुए। ऐसे निमित्तों से प्राय सभी मुख्य किसान नेता पकड़ कर जेल में डाल दिये गये। जवाहरलालजी और उनके साथ काम करने वाले अन्य कार्यकर्त्ताओं ने, किसानों को शान्ति और अहिंसा का पाठ पढ़ाने में कोई कसर न छोड़ी और सरकार के खूनी बदले को रोकने का भी बहुत प्रयत्न किया गया परन्तु जब तबीयतों में विक्षोभ पैदा हो जाता है और शक्तिशालियों का दिल क्रोध से भर जाता है, तब अनुनय विनय करने वालों की कौन सुनता है। कार्यकर्त्ताओं को उत्पात के रोकने में सफलता न मिली और वह आंदोलन जो इस शानदार तरीके पर आरम्भ हुआ था, गोली, कैद और गिरफ्तारियों की धांधल में समाप्त हो गया।

उस समय तो वह आन्दोलन समाप्त-सा हो गया, परन्तु वह किसानों पर और जवाहरलालजी पर बड़ा गहरा असर छोड़ गया। किसानों पर कांग्रेस की छाप बैठ गई और जवाहरलालजी के हृदय पर यह बात अंकित हो गई कि किसानों की दशा को सुधारे बिना स्वराज्य असम्भव है।



(५)

स्वराज्य मन्दिर मे

पजाब क खूनी नाटक पर .अमृतसर कांग्रेस के दिनों में सरकार ने एक हल्का सा पर्दा डालनका यत्न किया था। कांग्रेस के अधिवशन के दिनों में सम्राट पञ्चमजार्ज की ओर से एक घोषणा की गई, जिस मे आशा दिलाई गई, कि भारत को आहिस्ता, आहिस्ता, किश्तों द्वारा उत्तरदायित्वपूर्ण शासन दिया जायगा। साथ ही उन्हीं दिनों में मार्शलला द्वारा दण्डित तथा अन्य बहुत से राजनीतिक कैदियों को छोड़कर सरकार ने घाव पर मरहम लगाने की चेष्टा की परन्तु वह चेष्टा सफल नहीं हुई।

कांग्रेस ने सम्राट् की घोषणा को असन्तोषजनक और नाकाफी समझा और केवल कुछ कैदियों के छूटने से मार्शल-ला युग के घोर अत्याचार भुलाये नहीं जा सकते थे। वह असन्तोष का कारण कायम रहा।

महायुद्ध के पीछे युद्ध करने वाले देशों में से जिस देश पर सब से बड़ी आफत आई वह टर्की था। टर्की ने जर्मनी का साथ दिया था। पराजय हो जाने पर वह मित्र-दल के पूरे कब्जे में आ गया। वह उसके साथ चाहे जैसा सलूक करते। टर्की का सुल्तान संसार भर के मुसलमानों का धार्मिक शिरोमणि, खलीफा कहलाता था। वह खलीफा तभी तक रह सकता था, जब तक उसके पास राज्य की शक्ति हो। पराजित टर्की के शासक का वह अधिकार छीन लिया गया। इससे सामान्यतः संसार भर के, परन्तु मुख्यतः भारत के मुसलमानों में बड़ी हलचल सी मच रही थी, खिलाफत का नाश उन्हें इस्लाम का नाश-सा दिखलाई दे रहा था।

१६२० में खिलाफत की रक्षा के नाम पर भारतवर्ष के मुसलमानों में ज़ोरदार आन्दोलन उठ रहा था। मौलाना शौकत-अली और मुहम्मदअली उसके अगुआ थे। उन लोगों के क्रोध का मुख्य शिकार इंगलैंड था, क्योंकि वह उसी को टर्की के अधः-पात के लिये उत्तरदाता समझते थे। खिलाफत के कार्यकर्त्ताओं की एक कान्फ्रेंस दिल्ली में हुई, जिस में महात्मा गांधी ने भी

भाग लिया। हकीम अजमलखां, डा० अन्सारी, मौलाना अब्दुलबारी आदि प्रमुख मुसलमान उस आन्दोलन में खिंचते आ रहे थे। कान्फ्रेंस मे महात्माजी ने मुसलमानों को अहिंसात्मक उपायों से खिलाफत की लडाई लडने की सलाह देते हुये असहयोग करने की सलाह दी।। असहयोग का अभिप्राय यह था कि सरकार के शिक्षणालयों में बच्चे न पढाये जांय, कचहरियों में मुकदमे न लडे जायें, कोई टाइटिल मन्जूर न किये जायें, हर तरह की सरकारी नौकरी छोड दी जाय और सरकार से किसी प्रकार का वास्ता न रखा जाय।

मुसलमान उस समय जोश में थे। इधर देश के हृदय में पंजाब के अत्याचारों की याद ताज़ा थी और सम्राट् की शासन-सुधार सम्बन्धी घोषणा पर भी असन्तोष था। इस प्रकार स्वराज्य, पजाब और खिलाफत इन तीन आधार स्तम्भों पर असहयोग आन्दोलन का भवन खडा किया गया। मुसलमानों को अपने धार्मिक प्रश्न पर हिन्दुओं की क्रियात्मिक सहानुभूति बहुत ही प्यारी लगी, उस से उनके हृदय बहुत प्रभावित हुये। अनायास ही हिन्दू मुस्लिम एकता का प्रवाह देश भर में बड़े जोर से बहने लगा और देश भर में यह दो नारे मुख्य हो गये—महात्मा गांधी की जय, हिन्दू मुसलमान की जय।

देश भर में जागृति और एकता की जो लहर चली, उस के केन्द्र गांधी थे। यह तो नहीं कहा जा सकता कि

जी बिना विशेष प्रयास के ही अपने असहयोग और सत्याग्रह के सिद्धान्तों को देश के गले के नीचे उतार सके। १९२० में कांग्रेस के दो अधिवेशन हुये। कलकत्ते में विशेष अधिवेशन हुआ और नागपुर में साधारण। दोनों में एक ही विषय मुख्य था कि असहयोग और सत्याग्रह को स्वीकार किया जाय या नहीं। प्रारम्भ में इस प्रस्ताव का विरोध देशबन्धु चित्तरंजनदास और ला० लाजपतराय जैसे प्रभावशाली नेताओं की ओर से हो रहा था परन्तु धीरे २ महात्माजी के व्यक्तिगत प्रभाव की विजय हुई और कांग्रेस ने उनके अहिंसात्मक कानून-भङ्ग और असहयोग को मञ्जूर कर लिया।

जवाहरलालजी उस समय पहली श्रेणी के राजनीतिज्ञों में नहीं गिने जाते थे, इस कारण इन निश्चयों पर उनका विशेष असर नहीं था, तो भी हरेक विषय पर वह अपना अलगपन रखते थे। देश में जो जागृति हो रही थी, उसे वह पसन्द करते थे, एकता को वह आवश्यक समझते थे। परन्तु यह जागृति और एकता जिस सवारी पर बैठकर तशरीफ ला रही थी उसे वह नापसन्द करते थे और उससे घबराते थे। उस समय का मुख्य विषय खिलाफत बन रहा था। कांग्रेस की हरेक बैठक पर मज़हबी रंग चढ़ाया जा रहा था। जवाहरलालजी इसे देश के लिये बहुत खतरनाक समझते थे। राजनीति में मौलवियों और धर्माचार्यों की प्रधानता आपको बहुत अखरती थी।

परन्तु देश में आत्म-सम्मान का एक तूफान उठता हुआ देख कर अन्य देशभक्तों की तरह आपका हृदय भी कार्यक्षेत्र में कूदने के लिये अधीर हो रहा था, इसलिये सब संशयों और प्रश्नों को ताक में रखकर जवाहरलालजी आंदोलन के क्षेत्र में सोलहों आने कूद पड़े। महात्माजी के व्यक्तित्व का भी उन पर अद्‌भुत असर पड़ रहा था। १६२० से लेकर १६३४ तक भारतवर्ष का राजनीतिक नेतृत्व महात्मा गांधी के हाथों मे रहा। यह नेतृत्व कई दृष्टियों से असाधारण रूप में सफल रहा। उस सफलता के मुख्य कारण दो थे—पहला कारण महात्माजी का असाधारण व्यक्तित्व था, और दूसरा कारण महात्माजी द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का भारतीयपन था। शत्रुओं को भी स्वीकार करना पड़ेगा कि महात्मा गांधी एक साधारण ससार से निलक्षण मनुष्य हैं। इतना पवित्र, इतना तपस्वी और इतना सच्चा होते हुये भी, इतना चतुर, इतना कार्यकुशल और इतना महान्—परस्पर विरुद्ध गुणों का ऐसा सुन्दर मेल एक स्थान पर मिलना कठिन है। हृदय और मस्तिष्क दोनों के सुनहले गुणों की चमक एक ही केन्द्र में नहीं मिला करती। महात्मा गांधी का व्यक्तित्व चुम्बक की तरह आकर्षक है, और विद्युत की तरह गतिशील है। देशबन्धु दास, पं० मोतीलाल नेहरू, हकीम अजमलखां जैसे महान् व्यक्तियों को गांधीजी के व्यक्तित्व ने जीत कर अपना बना लिया था। पराजित व्यक्ति के हृदय में प्राय हार का कांटा रह जाता

है। महात्मा गांधी के चरित्र की यह सुन्दरता है, कि उनसे हारने वालों के हृदय में कांटा नहीं रहता, क्योंकि गांधीजी सदा कोमल तीरों से मारते हैं, और फिर भी चोट लगने की आशङ्का से सहानुभूति और उदारता की मरहम साथ रखते हैं। सफलता का दूसरा कारण उन सिद्धान्तों की भारतीयता थी, जिन को महात्माजी प्रतिपादन करते थे। अहिंसा, सत्य और त्याग — यह ऐसे आदर्श हैं, जिन्हें भारतवासी शायद सृष्टि आरम्भ से सुनते और मानते आये हैं। राजनीतिक दृष्टि से रात रही हो या दिन, शहर के महलों में और ग्राम की झोपड़ियों में रामायण की कथा कहने वाले लोग इन आदर्शों के राग तो गाते ही रहे हैं। जब राजनीति के मैदान में गांधीजी ने भारतीय हृदय की सब से गहरी सतह में सहानुभूति की सनसनी पैदा करने वाले उन विचारों को जनता के सामने पेश किया, तब उनके दिल और दिमाग का तार तार हिल उठा। राष्ट्रीयता का जन्म तो हो ही चुका था, महात्माजी जैसे तेजस्वी तपस्वी ने जब भारतीय जनता को भारतीय शब्दों में, भारतीयता का सन्देश सुना कर बतलाया कि तुम्हारी राष्ट्रीय अभिलाषाओं के प्राप्त होने का यह मार्ग है तो वह एक दम मन्त्र मुग्ध-सी हो गई। बड़े और छोटे सभी पर उस मन्त्र का प्रभाव हुआ। जवाहरलालजी महात्माजी की धार्मिकता से, खिलाफत सम्बन्धी नीति से और अन्य अनेक ऐसी ही गौण बातों से असहमत होते हुए भी महात्माजी के महान् व्यक्तित्व

से पूरी तरह प्रभावित हुए और उस समय अधिकांश राष्ट्रीय नेताओं की तरह जैसे मन्त्र बल से बंधे हुये हों, इस प्रकार महात्माजी द्वारा दहकाई हुई उस राष्ट्रीय यज्ञाग्नि मे कूद पड़े।

जवाहरलालजी जीजान से आन्दोलन में पड़ गये। उनका सारा समय देश की सेवा में व्यतीत होने लगा। देश की राजनीतिक प्रगति का प० मोतीलालजी पर भी पूरा असर हुआ। था। पजाब की और अवध की घटनाओं ने और महात्मा गांधी के व्यक्तित्व ने उनके हृदय के प्रवाह को सर्वथा बदल दिया था। लाखो की कमाई और जीवन के सब सुखों को लात मार कर वह नर-केसरी असहयोग की समर-भूमि में एक गम्भीर हुकार के साथ कूद पडा था। अब जवाहरलालजी के मार्ग में वह धर्म-सङ्कट न रहा। पिता और हृदय — दोनों की ओर से अनुमति मिल जाने पर वह पूरी शक्ति के साथ कांग्रेस के कार्य में जुट गये। बड़े पिता के पुत्र थे, योग्य थे, मन, वाणी और कर्म में एक थे और साहसी थे, कार्यकर्त्ताओं की श्रेणी में आते देर न लगी। सयुक्त प्रांत की कांग्रेस कमेटी की बागडोर शीघ्र ही उनके हाथ में आ गई और घर बार और परिवार की चिन्ताओं को छोड कर, एकमन होकर वह कांग्रेस के कार्य मे लग गये।

भारत की दहकती हुई असन्तोषाग्नि पर ठडा पानी छिड़कने — ब्रिटिश सरकार ने एक चाल चली—लार्ड रीडिंग उस

समय के प्रिन्स आफ वेल्स (एडवर्ड अष्टम) को भारत में लाकर भारतीय प्रजा की राजभक्ति को उकसाने का सन्सूबा बाँधा और तदनुसार १९२१ के अन्त में प्रिन्स-आफ-वेल्स के भारतागमन की घोषणा करदी। कांग्रेस को या महात्मा गांधी को प्रिन्स आव वेल्स के व्यक्तित्व से कोई शिकायत नहीं थी, परन्तु वह उस ब्रिटिश साम्राज्य का एक प्रतिनिधि बन कर आ रहा था जिस से भारतवासियों को शिकायतें ही शिकायतें थीं। इस कारण कांग्रेस की ओर से युवराज के स्वागत का बहिष्कार करने का निश्चय किया गया। वर्ष भर से जिस सङ्घर्ष की तैयारी हो रही थी, वह आ पहुंचा। सरकार के लिये यह एक नया परीक्षण था। वह उपद्रव को शान्त करना चाहती थी, और हिंसा की प्रवृत्ति को हिंसा से दबाना जानती थी, परन्तु अहिंसात्मक सत्याग्रह उसके लिये बिलकुल नई वस्तु थी। इतने व्यापी असन्तोष और ऐसे नये प्रकार के आन्दोलन को देख कर वह बौखला-सी गई और जिधर भी सूझा, हाथ-पांव चलाने लगी।

युवराज ने भारत में बड़ी अनिष्ट घड़ी में कदम रक्खा। बम्बई से ही अशुभ शकुन होने लगे प्रजा की ओर से युवराज का स्वागत काले कपड़ों और हड़ताल से होने लगा। भारत सरकार के लिये यह बड़ी लज्जा की बात थी कि वह सम्राट् के पुत्र का भारत में उचित सत्कार न करा सकी।

सरकार ने खिसियाना-सा होकर कांग्रेस और उसके स्वय-सेवक दलों पर आक्रमण जारी कर दिये। कांग्रेस को सत्याग्रह जारी करने का अच्छा हथियार मिल गया। महात्माजी के कार्यक्रम का तो मुख्य अंग ही सविनय कानून भंग था। सरकार ने स्वयसेवक दलों को नियम विरुद्ध करार देकर कानून भंग का आसान रास्ता दिखा दिया, स्वयसेवक भर्ती होने लगे और गिरफ्तार होने लगे।

इलाहाबाद में उस समय कांग्रेस के कार्यालय का सचालन जवाहरलालजी कर रहे थे। वहां भी युवराज के स्वागत की तैयारी प्रारम्भ होते ही स्वयसेवकों की भर्ती और हड़ताल कराने का उद्योग जारी हो गया। स्वयसेवकों की जो सूचि तैयार हुई, उसमें सब से पहला नाम पं० मोतीलालजी का था। गिरफ्तारियां आरम्भ हो गईं। पहले ही हल्ले में जो लोग पकड़े गये उनमें पिता और पुत्र दोनों थे। पं० मोतीलालजी पर कांग्रेस के स्वयसेवक होने का और जवाहरलालजी पर हड़ताल करने की प्रेरणा के लिये पोस्टर निकालने का अभियोग लगाया गया था। अदालतों से असहयोग हो रहा था, इस कारण किसी ने कोई सफाई न दी। एक मज़ेदार घटना हुई। पं० मोतीलालजी हिन्दी बहुत कम — नहीं के बराबर जानते थे। परन्तु गान्धीयता का दौर-दौरा था, स्वयसेवक के फार्म पर मोतीलालजी ने हिन्दी में हस्ताक्षर किये। अभियोग

के समय वह फार्म अदालत मे पेश हुआ। मोतीलालजी के हिन्दी हस्ताक्षर किसी ने उससे पहले देखे ही नहीं थे, तो उन्हें पहिचानता कौन ? बड़ी उलझन पड़ी। सरकार को सूझने लगा कि ज़रासी कानूनी कमी से अपराधियों का सरदार छूटा जा रहा है, और मोतीलालजी न ही जुर्म को स्वीकार करते हैं और न इन्कार करते हैं। तब आखिर भले आदमियों से भरे हुए इलाहाबाद के बाज़ारों में से फटे हुए मैले कपडों वाला एक प्राणी यह कहने के लिये लाया गया कि, मैं मोतीलालजी के हिन्दी हस्ताक्षरों को पहिचानता हू। उस शहादत पर प० मोतीलालजी को ६ मास का कारावास मिला। जवाहरलालजी को भी हड़ताल की घोषणा के अपराध मे उतनी ही सज़ा दी गई। पिता और पुत्र दोनों इकट्ठे लखनऊ जेल में भेज दिये गये।

पं० मोतीलालजी पूरे समय तक जेल में रहे, परन्तु जवाहरलालजी के बारे मे ३ महीने के पीछे सरकार को इलहाम हुआ कि उन्हें व्यर्थ में ही सज़ा दी गइ, क्योंकि हड़ताल की घोषणा करना जुर्म नहीं है। ३ महीने सज़ा भोग लेने पर उन्हें रिहा कर दिया गया।

उस समय तक देश में लगभग ३० हज़ार सत्याग्रही जेल में जा चुके थे। दोनों ओर लोगों बहुत थकान आ गई थी। देखने में आन्दोलन भी ढीला पड रहा था, और गिरफ्तारियां भी कम हो रही थीं। जवाहरलाल जी को सुस्ती देखकर बहुत

दुःरर हुआ। उन्होंने आन्दोलन में फिर तेज़ी पैदा करने का निश्चय किया, और वालन्टियरों को इकट्ठा करके उन कपड़े के व्यापारियों पर धरना देने लगे, जिन्होंने अपनी पहले की प्रतिज्ञा के विरुद्ध विदेशी माल बेचना आरम्भ कर दिया था। दो दिन के पिकेटिंग के पश्चात् आप गिरफ्तार कर लिये गए। आप पर यह अभियोग लगाया गया कि आपने व्यापारियों को कानून विरोधी ढङ्ग पर धमकाया और उन से जुरमाने वसूल किये। मुकदमा क्या था, एक मज़ाक था। जवाहरलालजी ने उस मज़ाक में कोई हिस्सा न लिया, केवल अपना एक वक्तव्य पढ़कर सुनाया, जिस में सत्याग्रह की विशद और युक्तियुक्त व्याख्या की। अदालत ने आप को दोषी करार देकर १ वर्ष ९ महीने के कारावास की सजा दी। ६ सप्ताह की अनुपस्थिति के पीछे, आप अपनी लम्बी सजा भोग लेने के लिये फिर पुराने साथियों के पास लखनऊ जेल में पहुंच गये।



हट और गोलियों की दनदनाहट के बीच में से होकर गुजर रही थी। युवराज कलकत्ते में जाने वाले थे, उधर कांग्रेस अधिवेशन अहमदाबाद में होने वाला था, गिरफ्तारियों का जोर कम हो रहा था, मौका अनुकूल समझ कर लार्ड रीडिंग ने गोलमेज कान्फ्रेन्स के रूप में समझौते का प्रस्ताव इशारे के तौर पर फेंक दिया। देश के बहुत नेताओं न इस मौके को गनीमत समझा और महात्मा जी को प्रेरणा की कि वह सुलह की बातचीत करने को तैयार हो जायें, परन्तु अलीबन्धु जेल में थे, महात्मा जी के धर्म ने यह स्वीकार न किया कि मित्रों के जेल में रहते सुलह की जाय। इस कारण सुलह की बातचीत आगे न चली। अहमदाबाद की कांग्रेस में देश का जोश अपनी उच्चतम सीमा तक पहुच गया था। महात्माजी के शब्दों में ऐसा जादू भरा हुआ था कि जनता स्वराज्य की अत्यन्त शीघ्र सम्भावना पर विश्वास करने लगी थी। महात्माजी को कांग्रेस ने सत्याग्रह संग्राम के लिये डिक्टेटर के पूर्णाधिकार प्रदान कर दिये।

गुजरात के बारडोली ताल्लुका में सत्याग्रह की लड़ाई को प्रारम्भ करने का निश्चय किया गया था। देश में उत्सुकता थी और सरकार में आशङ्का। दोनों धड़कते हुये हृदयों से विचार रहे थे कि अब क्या होना है कि इतने में संयुक्तप्रान्त में एक दुर्घटना घटित हो गई। गोरखपुर जिले में चौरीचौरा नाम का एक स्थान है। वहां पुलिस के साथ जनता की टक्कर हो गई,

जिससे पुलिस की काफी हानि हुई, पुलिस की चौकी जला दी गई और पुलिस के कई आदमी हताहत हुये।

महात्माजी पर इस दुर्घटना का बहुत बुरा असर हुआ। उनका हृदय हिंसा के समाचारों से कांप गया। उन्हें ऐसा भान हुआ कि देश अहिंसा में सर्वथा विश्वास नहीं रखता और क्योंकि सत्याग्रह की लड़ाई के लिये अहिंसा अत्यन्त आवश्यक है, उन्होंने सत्याग्रह की लड़ाई को स्थगित करने का निश्चय कर लिया। १६२२ के फरवरी मास में बारडोली में जाकर महात्माजी ने वर्किंग कमेटी की एक बैठक की और उसमें सत्याग्रह को स्थगित कर दिया।

महात्माजी के इस निश्चय के दो परिणाम हुये। एक तो देश मे ज़बर्दस्त प्रतिक्रिया पैदा हो गई। यदि एक स्थान पर हिंसा होने से देश भर में सत्याग्रह की लड़ाई बन्द की जा सकती है तो सत्याग्रह तो सदा बन्द ही रहेगा, क्योंकि कहीं न कहीं हिंसा तो हमेशा कराई ही जा सकती है, राष्ट्रीयता के विरोधियों के पास ऐसे भड़काने वालों की कमी नहीं जो जनता से मूर्खता के काम करवा दें और इस प्रकार सविनय कानून को सदा असम्भव बनाये रखें। सत्याग्रह के एक दम स्थगित करने से ऐसा असर हुआ मानो राष्ट्रीयता के पूरे वेग से भागते हुए मदमस्त घोड़े के माथे पर चट्टान टकरा गई हो और वह लड़खड़ा कर पीछे गिर जाय। वह राष्ट्रीयता का उमड़ा हुआ प्रवाह ठोकर

हट और गोलियों की दनदनाहट के बीच में से होकर गुजर रही थी। युवराज कलकत्ते में जाने वाले थे, उधर कांग्रेस अधिवेशन अहमदाबाद में होने वाला था, गिरफ्तारियों का जोर कम हो रहा था, मौका अनुकूल समझ कर लार्ड रीडिंग ने गोलमेज कान्फ्रेन्स के रूप में समझौते का प्रस्ताव इशारे के तौर पर फेंक दिया। देश के बहुत नेताओं ने इस मौके को गनीमत समझा और महात्मा जी को प्रेरणा की कि वह सुलह की बातचीत करने को तैयार हो जायें, परन्तु अलीबन्धु जेल में थे, महात्माजी के धर्म ने यह स्वीकार न किया कि मित्रों के जेल में रहते सुलह की जाय। इस कारण सुलह की बातचीत आगे न चली। अहमदाबाद की कांग्रेस में देश का जोश अपनी उच्चतम सीमा तक पहुंच गया था। महात्माजी के शब्दों में ऐसा जादू भरा हुआ था कि जनता स्वराज्य की अत्यन्त शीघ्र सम्भावना पर विश्वास करने लगी थी। महात्माजी को कांग्रेस ने सत्याग्रह संग्राम के लिये डिक्टेटर के पूर्णाधिकार प्रदान कर दिये।

गुजरात के बारडोली ताल्लुका में सत्याग्रह की लड़ाई को प्रारम्भ करने का निश्चय किया गया था। देश में उत्सुकता थी और सरकार में आशङ्का। दोनों धड़कते हुये हृदयों से विचार रहे थे कि अब क्या होना है कि इतने में संयुक्तप्रान्त में एक दुर्घटना घटित हो गई। गोरखपुर जिले में चौरीचौरा नाम का एक स्थान है। वहां पुलिस के साथ जनता की टक्कर हो गई,

जेल से मुक्त होने पर जवाहरलालजी ने देश मे जो कुछ देखा, उससे उनके हृदय में प्रसन्नता का सञ्चार नहीं हुआ। राजनीतिक आन्दोलन शान्त पड गया था। इतना ही नहीं उसकी प्रतिक्रिया बहुत ही भद्दे रूप में दिखाई दे रही थी। देश मे स्थान स्थान पर हिन्दू मुसलमानों के झगडे पैदा हो रहे थे और कांग्रेस के अन्दर दलबन्दी का बाजार गरम हो गया था। यह दृश्य एक राष्ट्रभक्त को कपा देने के लिये पर्याप्त था। जवाहरलालजी को भी उस दशा को देख कर बडा दु ख हुआ।

परन्तु केवल दु खी होकर भी क्या करते। उस समय जो उपाय सम्भव था, उसे काम मे लाने के लिये उद्यत हो गये। आपने कांग्रेस के टूटे हुये तार को जोडने के लिये सारी शक्ति लगा दी। सब से प्रथम आपने सयुक्त प्रांत की प्रांतिक कांग्रेस कमेटी के पुनर्जीवन को हाथ में लिया। १६२२ में सरकार ने अधिवेशन मे बैठे हुए प्रांतिक कमेटी के सब सदस्यों को गिरफ्तार कर लिया था। तब से कमेटी का काम स्थगित हो गया था, उसे फिर से जीवित किया गया। इसी बीच में प्रयाग की म्युनिसिपैलिटी का चुनाव आ पहुंचा। कांग्रेस ने चुनाव में भाग लिया, और दूसरी सफलता प्राप्त की। सफल पार्टी का काम होता है कि वह अपने आदमी को कमेटी के सभापति पद पर स्थापित करे। कांग्रेस पार्टी ने बहुत सोच सुविचार के पश्चा निश्चय किया कि इलाहाबाद की म्युनिसिपै-

स्वादर पीछे को लौंग और अपने ही शरीर पर टूट पड़ा। राष्ट्रीय आन्दोलन की यही दशा हुई।

जो देशभक्त जेल में मौजूद थे, उन्हें बड़ी निराशा हुई। जवाहरलालजी भी उस समय लखनऊ जेल में अपनी पहली सजा काट रहे थे। उन्हें भी बड़ा दुख हुआ। जेल से छूटने पर वह महात्माजी से मिलने के लिये अहमदाबाद गये, पर उस समय तक आन्दोलन को शिथिल होता देखकर सरकार ने महात्मा गांधी को गिरफ्तार कर लिया था। जवाहरलालजी महात्माजी से तो मिले, परन्तु उस समय जब महात्माजी पर अभियोग चल रहा था। अमृत जज ने बड़ी सभ्यता के शब्दों में महात्माजी को ६ वर्ष के लिये कारागार भेजकर इस बात का सबूत दिया कि सरकार अपने विरोधी की निर्बलता से लाभ उठाने में पूरी तरह सिद्धहस्त है।

जवाहरलालजी की दूसरी बार की जेलयात्रा भी पूरी लम्बाई तक न चली। ६ महीने के बाद संयुक्तप्रांत के राजनीतिक कैदी छोड़े जाने लगे। यह शायद एक ही ऐसा अवसर था, जब सरकार ने कौंसिल का कहा माना। कौंसिल ने इस आशय का प्रस्ताव स्वीकार किया कि राजनीतिक कैदियों को छोड़ दिया जाय। सरकार ने इस सलाह को मान लिया और ३१ जनवरी सन् १९२२ को सब राजनीतिक बन्दी छोड़ दिये गये।

जेल से मुक्त होने पर जवाहरलालजी ने देश में जो कुछ देखा, उससे उनके हृदय में प्रसन्नता का सञ्चार नहीं हुआ। राजनीतिक आन्दोलन शान्त पड़ गया था। इतना ही नहीं उसकी प्रतिक्रिया बहुत ही भद्दे रूप में दिखाई दे रही थी। देश में स्थान स्थान पर हिन्दू मुसलमानों के झगडे पैदा हो रहे थे और कांग्रेस के अन्दर दलबन्दी का बाजार गरम हो गया था। यह दृश्य एक राष्ट्रभक्त को कपा देने के लिये पर्याप्त था। जवाहरलालजी को भी उस दशा को देख कर बडा दु ख हुआ।

परन्तु केवल दु खी होकर भी क्या करते। उस समय जो उपाय सम्भव था, उसे काम मे लाने के लिये उद्यत हो गये। आपने कांग्रेस के टूटे हुये तार को जोडने के लिये सारी शक्ति लगा दी। सब से प्रथम आपने सयुक्त प्रांत की प्रांतिक कांग्रेस कमेटी के पुनर्जीवन को हाथ में लिया। १६२२ में सरकार ने अधिवेशन मे बैठे हुए प्रांतिक कमेटी के सब सदस्यों को गिरफ्तार कर लिया था। तब से कमेटी का काम स्थगित हो गया था, उसे फिर से जीवित किया गया। इसी बीच मे प्रयाग की म्युनिसिपैलिटी का चुनाव आ पहुंचा। कांग्रेस ने चुनाव में भाग लिया, और दूसरी सफलता प्राप्त की। सफल पार्टी का काम होता है कि वह अपने आदमी को कमेटी क सभापति पद पर स्थापित करे। कांग्रेस पार्टी ने बहुत सोच सुविचार के पश्चा निश्चय किया कि इलाहाबाद की म्युनिसिपै-

सिटी का चेयरमैन जवाहरलालजी को बनाया जाय। पहले तो जवाहरलालजी ने थोड़ी अनिच्छा प्रकट की परन्तु जब उनसे कांग्रेस के गौरव के नाम से अपील की गई तो उन्होंने चेयरमैन बनना स्वीकार कर लिया।

म्यूनिसिपैलिटी के चेयरमैन बनकर जवाहरलालजी ने इलाहाबाद की जो सेवा की, उसे वहाँ के लोग अब तक याद करते हैं। काम में सुस्ती और भद्दापन आपको बिलकुल पसन्द नहीं। आप सफ़ाई और चुस्ती से काम करते हैं, और दूसरों से भी वैसे ही काम की आशा रखते हैं। आपके समय में कमेटी के काम में बहुत उन्नति हुई, रिश्वतखोरी और बेईमानी के आप शत्रु थे। थोड़े ही समय में आपने इलाहाबाद के नागरिक शासन में रूह फूंक दी थी।

जो सार्वजनिक काम जवाहरलालजी ने अपने जिम्मे लिये हुए थे, वही कम नहीं थे कि इतने में एक और जिम्मेदारी भी आपके कन्धों पर डाल दी गई। आपको आल इंडिया कांग्रेस कमेटी का जनरल सेक्रेटरी बना दिया गया।

उपर्युक्त तीन कामों में से एक एक ही इतना भारी था कि साधारण आदमी के कन्धों को झुका देता, आपके पास तो तीन काम थे, फिर भी आपने उन्हें जिस सुन्दरता से निभाया वह इस बात का सबूत था कि आपकी कार्यशक्ति साधारण कोटि से बहुत बढ़ी हुई है।

हमें डर है कि चरितनायक के सार्वजनिक जीवन के प्र आवेश में हम उनके निजू जीवन की चर्चा को भूल से गये हैं। जवाहरलालजी अपने मां बाप क इकलौते बेटे हैं। पिता शायद अपने बाह्य जीवन के कोलाहल में पुत्र को भुला सके, परन्तु माता के लिये तो वह सब कुछ थे। कमलाजी का तो वह सर्वस्व ही थे। उनका गृहस्थ ही अभी कितने दिनों का था। एक छोटी सी बच्ची भी थी, जिसे हम जवाहरलालजी और कमलाजी को बांधने वाली सोने की जञ्जीर कह सकते हैं। इन तीनों प्राणियों को जवाहरलालजी की बड़ी आवश्यकता थी, परन्तु उन्हें जेल और काम से फुर्सत ही कहां थी। या तो जेल में रहते, और या सार्वजनिक जीवन में खिंचे खिंचे फिरते। उनका निजू जीवन प्राय समाप्त सा हो गया था।

माता और पत्नी उनके लिये बहुत ही चिन्तित रहा करती थीं। दोनों के ही स्वास्थ्य पर जवाहरलाल जी की जीवनचर्य्या का असर पड रहा था। दोनों ही अस्वस्थ रहने लगीं। पुत्री इन्दिरा अभी छोटी थी, और बहुत कुछ नहीं समझती थी, परन्तु यह तो उसे भी मालूम होगया था कि पुलिस पिता जी के पीछे बुरी तरह पडी है और वह उन्हें आराम से नहीं बैठने देती। एक विशेष प्रकार का कडवापन लड़की के जीवन में भी आ गया था।

बाहिर की दुनिया शायद ही कभी जान सके कि जवाहर-

धमका कर निश्चिन्त कर देते थे। उन्होंने कभी जवाहर लाल जी को कमाई की चिन्ता नहीं करने दी। वह यही चाहते थे कि उन का पुत्र मातृभूमि की सेवा में अपना पूरा समय व्यतीत करे।

कांग्रेस में इस समय दो दल हो गये थे। एक दल का पक्ष था कि कांग्रेस कौंसिलों के चुनाव में हिस्सा लेकर उन पर अधिकार जमाने का यत्न करे और इस प्रकार किसी न किसी रूप में राजनीतिक संग्राम जारी रहे। इस दल के नेता श्रीयुत देशबन्धुदास और पं० मोतीलाल नेहरू तथा श्री विट्ठलभाई पटेल थे। दूसरा दल अपरिवर्तनवादी के नाम से प्रसिद्ध था। श्रीयुत राजगोपालाचार्य, श्रीयुत वल्लभभाई पटेल आदि नेता इस दल के अगुआ थे। गया की कांग्रेस में दोनों दलों में खूब रस्साकशी हुई। देशबन्धुदास इस अधिवेशन में सभापति थे। उनका सारा प्रभाव भी कौंसिल प्रवेश को कांग्रेस में स्वीकार न करा सका। कौंसिल प्रवेश के नेताओं ने गया में ही स्वराज्य पार्टी के नाम से एक दल का सङ्गठन कर लिया, और उस दल की ओर से कौंसिल प्रवेश के पक्ष में आन्दोलन करने का आयोजन किया।

दूसरी ओर अपरिवर्तन दल भी मौन नहीं रहा। वह अपने को महात्मा गांधी का सच्चा अनुयायी और शिष्य मानते हुए कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहता था जिसमें महात्माजी द्वारा

बतलाये हुए असहयोग मार्ग का विघात होता हो। उस दल के नेताओं ने भी देश में घूमकर कौंसिल प्रवेश के विरुद्ध आन्दोलन करने का निश्चय किया।

जवाहरलालजी की स्थिति दोनों दलों के बीचोंबीच थी। वह स्वराज्य पार्टी के कार्यक्रम मे विश्वास नहीं रखते थे, और स्वराज्य पार्टी की मनोवृत्ति में गिरावट की आशङ्का देखते थे। परन्तु वह अपरिवर्तनवादी भी नहीं थे, क्योंकि राजनीति उनकी दृष्टि में राजनीति ही थी, धर्म नहीं। यदि समय के अनुसार नीति में परिवर्तन करना पड़े तो जवाहरलालजी उसके सब से बड़े समर्थक होंगे। अपरिवर्तनवादी चाहते थे कि कांग्रेस केवल रचनात्मक कार्यक्रम पर ज़ोर दे, और जवाहरलालजी केवल रचनात्मक कार्यक्रम को सेवासमिति के कार्य से अधिक कुछ नहीं मानते। ऐसी दशा में, उनके लिये एक मार्ग का निश्चय करना कठिन था। उन्हें और डाक्टर अन्सारी को उस समय केन्द्रदल के नेता माना जाता था। आशा की जाती थी कि दोनों दलों के विरोध को यह लोग किसी न किसी प्रकार से शान्त करके कांग्रेस की एकता की रक्षा करने में सफल होंगे।

अन्त तक स्वराज्य दल के प्रति जवाहरलालजी का यही सलूक रहा कि न तो वह उसमें शामिल हुए और न उसका विरोध किया। पं० मोतीलालजी जानते थे कि लड़का उनसे भिन्न मत रखता है परन्तु या तो वह बुद्धि स्वातन्त्र्य के इतने

कट्टर पक्षपाती थे, और या उनका आत्माभिमान यह गवारा नहीं करता था, परन्तु यह सत्य है कि जिन विषयों पर मतभेद था, उन पर मोतीलालजी जवाहरलालजी से कभी बहस न करते थे, और न अपनी सम्मति का बोझ ही उन पर डालते थे। जवाहरलालजी राजनीति में अपना मार्ग चुनने में बिलकुल स्वतन्त्र थे।

इस परिस्थिति से जवाहरलालजी का कांग्रेस के क्षेत्र में एक स्वतन्त्र और प्रमुख स्थान बन गया। वह दोनों विरोधी दलों में से किसी में भी सम्मिलित नहीं थे, और फिर भी उनकी कांग्रेस में बहुत ऊंची स्थिति थी। दोनों दलों के विरोध से बचने के लिये ही वह कांग्रेस के सेक्रेटरी बनाये गये थे।



(७)

नाभा काण्ड

१६२३ में अकाली सिक्खों का सत्याग्रह पूरे यौवन पर था। सत्याग्रह का उद्देश्य गुरुद्वारों का सुधार था। सिक्ख लोग निकम्मे विलासी महन्तों से छीन कर गुरुद्वारों की गद्दियों को गुरुद्वारा प्रबन्ध कमेटी के आधीन ला रहे थे। इस कार्य में महन्तों से और अन्त में सरकार से संघर्ष पैदा होना स्वाभाविक ही था। उस समय संघर्ष में सविनय कानून भंग के हथियार को काम में लाते थे। देशभर में सिक्खों के सत्याग्रह को बड़ी दिलचस्पी से देखा जा रहा था। उद्देश्य था सुधार—और साधन था सत्याग्रह—इस कारण कांग्रेस की सिक्खों के साथ सहानुभूति थी।

गुरुद्वारा आन्दोलन में से ही एक नई शाखा निकल आई। पटियाला और नाभा के सिक्ख शासकों में परस्पर वैमनस्य चला आता था। पटियाला नरेश अंग्रेजी सरकार का दुलारा था, और नाभा नरेश के साथ अकालियों की सहानुभूति थी। अंग्रेजी सरकार ने नाभा नरेश को दोषी करार देकर गद्दी से उतार दिया, और नाभा के शासन के लिये एक अंग्रेज शासक नियत कर दिया। इससे अकाली असन्तुष्ट हो गये, और उन्होंने नाभा की सीमा के अन्दर जैतू नाम के एक स्थान पर अपना मोर्चा जमा दिया। अकाली दल वहां जाकर अखण्ड पाठ करने लगे। नाभा के अंग्रेज शासक ने उन्हें रोकने की आज्ञा दी। इसी में जैतूकाण्ड जारी हो गया। अकाली जत्थे दूरदूर से वहां जाते, उन्हें पहले जी खोलकर पीटा जाता, और फिर गिरफ्तार कर लिया जाता था।

दिल्ली में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन होकर चुका था। कुछ मित्रों ने वहां सलाह दी कि घटनास्थल पर जाकर जैतू के मोर्चे को देखा जाय। इस निश्चय के अनुसार पं० जवाहरलाल नेहरू, लाहौर के मि० के० सन्तानम् और मि० ए० टी० गिड्वानी जैतू के लिये रवाना हो गये। एक जत्था जैतू की ओर जा रहा था। उसके पीछे पीछे, परन्तु बिलकुल अलग, तीनों मित्र जत्थे की यात्रा को देखते हुए जा रहे थे। वह नाभा की सीमा के अन्दर घुस चुके थे। इतने में नाभा के शासक

का हुक्म लेकर पुलिस का एक अफ़सर उपस्थित हुआ। हुक्म यह था कि "तुम लोग नाभे की सीमा के अन्दर मत घुसो, और यदि घुस चुके हो तो फौरन बाहर चले आओ।" तीनों मित्रों ने उत्तर दिया कि अब हम नाभा की सीमा में आ चुके हैं, सीमा में न आने के हुक्म का तो कोई मतलब ही नहीं, और बाहर ले जाने वाली गाडी के आने में देर है। तबतक हम यहीं रहना पसन्द करते हैं, और हमारा जत्थे से कोई सम्बन्ध नही।

हुक्म की अवहेलना करने पर तीनों को गिरफ्तार कर लिया गया, और हथकडी वेडी से सुसज्जित करके नाभा ले जाया गया। जेल में जाकर हथकडी वेडी तो खोल दी गई, परन्तु जो स्थान रहने को मिला, वह नरक से भी बदतर था। बदबू और कीडों मकोडों के कारण नाक में दम था। जब रात में सोये तो चूहों के मारे नींद न आइ।

तीनों मित्रों पर दो मुकद्दमे इकट्ठे ही चलाये गये। एक मुकद्दमा तो आज्ञा भग के अपराध में था और दूसरा षड्यन्त्र के अपराध मे। षड्यन्त्र का मुकद्दमा तब तक नहीं चल सकता था, जब तक अभियुक्तों की संख्या कम से कम ४ न हो, इसलिये शायद अँग्रेज शासक के हुक्म से एक बेचार बूढे अकाली को भी अभियोग में नत्थी कर दिया गया था।

कई दिनों तक अभियोग का नाटक होता रहा। न वहां कोई कानून था और न अभियोग का ढग। सभी शुद्ध शासक

के इशारे से चल रहा था। जज तो कठपुतलियों से भी बदतर थे। अभियोग बिल्कुल झूठ थे, इस कारण अभियुक्तों ने चाहा कि किसी अच्छे से वकील को सफ़ाई के लिये बुला लें, परन्तु अंग्रेज शासक का हुक्म था कि कोई बाहिर का वकील रियासत में न आयगा। इस कारण सफ़ाई देने का विचार बिलकुल छोड़ कर केवल वक्तव्य दिये गये। परन्तु वहां तो वक्तव्य भी व्यर्थ ही थे। दोनों अभियोग एक ही दिन समाप्त हुए। आज्ञाभग के अपराध में ६ मास और षड्यन्त्र करने के अपराध में २ वर्ष की सज़ा का हुक्म हुआ। आज्ञा सुन कर जब वह लोग जेल में वापिस पहुंचे, तो उन्हें सुपरिन्टेन्डेन्ट ने सूचना दी कि वह दण्ड शासक के हुक्म से स्थगित कर दिये गये हैं और उन्हें नाभे की सीमा से बाहिर चले जाना चाहिये। रात की गाड़ी से चल कर वह लोग प्रात काल दिल्ली आ गये। और इस प्रकार यह नाभा-काण्ड समाप्त हुआ। सज़ा, और उसे स्थगित करने की आज्ञाओं की प्रति मांगी और आज तक नहीं मिली।

नाभे की जेल से तो छूट आये, परन्तु वहां जिन रोग के कीटाणुओं से वास्ता पड़ा था, उनसे न छूट सके। तीनों ने उस जेल से टाइफायड के परमाणु ले लिये थे, जिनके कारण उन सब को कई सप्ताहों तक रोग की शय्या पर लेटना पड़ा।

(८)

ब्रूसल्स और मास्को में

भारत की राजनीति उन वर्षों में बैलगाडी की चाल से चल रही थी। धीरे धीरे, झटके खाती हुई और आवाज़ करती हुई वह किसी न किसी तरह आगे बढने का यत्न कर रही थी। उस समय के राष्ट्रीय जीवन में स्वाधीनता की चिन्ता पीछे पड गई थी और हिन्दू-मुसलमानों के साम्प्रदायिक झगडे मुख्य हो गये थे। कांग्रेस का कार्यक्रम भी कौन्सिल की कार्रवाई तक परिमित होता जा रहा था। दोनों में ही जवाहरलाल जी की कोई दिलचस्पी नहीं थी। कांग्रेस के जनरल सेक्रेटरी की हैसियत से यह गाडी तो उन्हीं को हांकनी पड़ती थी।

१९२३ में कांग्रेस का अधिवेशन कोकनाडा में हुआ। उसके सभापति मौ० मुहम्मदअली थे। मौलाना का स्वभाव बड़ा उग्र था। उनके साथ निभाना किसी साधारण व्यक्ति का काम नहीं था। उन्होंने अपने वर्ष में जनरल सेक्रेटरी का काम करने के लिये जवाहरलालजी को वरण किया। अगले वर्ष वेलगांव में महात्मा गांधी कांग्रेस के सभापति चुने गये। उन्होंने भी अपने वर्ष में सेक्रेटरी पद के लिये जवाहरलालजी को ही चुना। इस प्रकार आप कांग्रेस के स्थायी जनरल सेक्रेटरी बनते जा रहे थे।

कर्तव्यपालन तो कर रहे थे, परन्तु जी उचाट था, क्योंकि उनका दिल न तो मनघडन्त साम्प्रदायिक समस्या में लगता था और न ही कौंसिल की उलझनों से सन्तुष्ट होता था। इसी बीच में दो छोटी २ वर्णन करने योग्य घटनायें हुईं, जिनका निर्देश कर देना आवश्यक है। कोकनाडा कांग्रेस में हिन्दुस्तानी सेवा-दल की बुनियाद डाली गई। उसके प्रधान-मन्त्री डा० हार्डीकर बनाये गये और उनके आग्रह पर दल की प्रधानता जवाहरलालजी ने स्वीकार की।

आप अकस्मात् एक और सत्याग्रह में भी शामिल हो गये। प्रयाग में कुम्भ का मेला था। उस अवसर पर पुराने विचार के लोग त्रिवेणी पर स्नान करने में पुण्य मानते हैं, उस वर्ष सङ्गम के स्थान पर किनारा खराब हो गया था, जिस से भीड़ के स्नान करने में डूब जाने का खतरा था। सरकार ने उस

स्थान पर स्नान की मनाही कर दी और एक लम्बा चौड़ा जङ्गला लगाकर वहां जाने का रास्ता रोक दिया। श्रद्धालु लोगों को इस से बहुत कष्ट पहुंचा और उन्होंने सत्याग्रह करने का निश्चय किया। प० मदनमोहन मालवीय उस दल के नेता बने और वह लोग उस जङ्गले के पास जाकर रेत में धरना देकर बैठ गये। जवाहरलालजी गंगास्नान से मुक्ति मिलने में तो विश्वास नहीं रखते, परन्तु सत्याग्रह की बात उन्हें पसन्द आ गई, और जब मालवीयजी जैसे बुजुर्ग को धरना देते देखा तो अपने को न रोक सके और सत्याग्रहियों में शामिल होकर मालवीयजी के पास जा बैठे।

उधर पुलिस और फौज ने उन लोगों को घेर लिया। इसी तरह घण्टों बीत गये, पर कोई पक्ष टस से मस न हुआ। ऐसा निष्क्रय सत्याग्रह जवाहरलालजी को पसन्द न आया। और वह रेत से उठकर उस जङ्गले पर चढ़ने लगे, जो उन के और जनता के बीच में बनाया गया था। उनकी देखादेखी और लोग भी जङ्गले पर चढ़ने लगे। जवाहरलालजी जंगले की चोटी पर जा पहुचे और वहां एक बांस में बांध कर तिरङ्गा झण्डा फहरा दिया। शाम होने से पूर्व सरकार और मालवीयजी दोनों ही थक गये। मालवीयजी की पार्टी ने रेत पर धरना छोड़ कर जवाहरलालजी का अनुसरण करते हुये क्रियात्मक सत्याग्रह कर डाला और सरकार ने मामले को तूल देना उचित

न समझ कर उन पर किसी प्रकार की कानूनी कार्रवाई न की।

इधर कमलाजी का स्वास्थ्य बहुत दिनों से गिर रहा था। जवाहरलालजी देश के कामों में इस बुरी तरह लगे हुये थे, कि उन्हें घर की सुध बुध नहीं थी। कमलाजी अधिक रोगी होती गईं, यहां तक कि उन्हें हस्पताल लेजाना पड़ा। कानपुर कांग्रेस के पीछे डाक्टरों ने सलाह दी कि स्वास्थ्य-सुधार के लिये कमला जी का योरोप जाना आवश्यक है। जवाहरलालजी देश के खिंचे हुये वातावरण से कुछ अवकाश चाहते थे। १६२६ के मार्च मास में वह, कमलाजी और पुत्री इन्दिरा के साथ योरोप के लिये रवाना हो गये। १६२७ के प्रारम्भ में प० मोतीलाल जी को भी एक मुकद्दमे के सिलसिले में योरोप जाना पड़ा। कुछ दिनों तक सब लोग वहां साथ रहे और कई स्थानों में भ्रमण किया।

जवाहरलालजी ने इस यात्रा में मध्य योरोप के अनेक देशों का भ्रमण किया, और वहां के राजनीतिज्ञों से मिले। स्विजरलैंड, फ्रांस, जर्मनी आदि देशों में जो भारतवासी बसे हुये हैं, जवाहरलालजी उनसे भी मिले, और वहां की परिस्थिति पर बातचीत की। महायुद्ध के पीछे योरोप की राजनीति में जो उतार चढ़ाव होते रहे, उनके अध्ययन का इस से अच्छा कौनसा अवसर मिल सकता था।

जवाहरलालजी के लिये यह कार्य और भी आसान हो गया, क्योंकि उन्हीं दिनों ब्रूसल्स मे संसार की अधिकारहीन जातियों की बडी कान्फरेंस हुई, जिसमें जर्मनी, चीन, जावा, पैलस्टाइन, सीरिया, मिस्र, अरब और नीग्रो देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। जवाहरलालजी उस कान्फरेंस मे भारत के प्रतिनिधि की हैसियत से सम्मिलित हुये।

उस कान्फरेंस में बहुत ठोस काम तो न हो सका, तो भी इतना लाभ अवश्य हुआ कि अधिकारहीन देश एक दूसरे से परिचित हो गए, और कान्फरेंस के अन्त मे एक साम्राज्य विरोधी सघ की स्थापना की गई। जवाहरलालजी उस सघ के सदस्य चुने गये। कई वर्षों तक आप उसके सदस्य रहे, परन्तु जब दिल्ली मे सरकार के साथ सुलह के एक कागज पर अन्य भारतीय नेताओं के साथ आपने भी हस्ताक्षर कर दिये तब संघ वालों ने आपको बहुत भला बुरा लिखा, और अन्त मे सघ की सदस्यता से अलग कर दिया।

प० मोतीलालजी के योरोप पहुच जाने पर सारी मण्डली ने रूस का भी भ्रमण किया। उन दिनों मास्को में सोवीट सरकार की १० वीं वर्षगांठ का उत्सव मनाया जा रहा था। दोनों नेहरू [illegible]त हुये।

इस यात्रा से दो लाभ हुए। कमलाजी का स्वास्थ्य कुछ सुधर गया, और जवाहरलालजी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की उस समय की दशा से परिचित और प्रभावित होगये।



(६)

राष्ट्रपति के पद पर

जवाहरलालजी ठीक अवसर पर भारत में वापिस आ गये। १९२२ में सत्याग्रह के स्थगित होने पर जो प्रतिक्रिया पैदा हुई थी, वह समाप्त सी हो रही थी, और भारत की राजनीति के वातावरण में अशांति के चिन्ह दिखाई दे रहे थे। देश साम्प्रदायिक झगड़ों और केवल कौंसिल के समाचारों से ऊब कर राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिये कोई ठोस कदम उठाने को उत्सुक था। यह नींद से उकता कर, वीरतापूर्ण कार्य-नीति के लिये लालायित हो रहा था।

मद्रास में कांग्रेस का जो अधिवेशन हुआ, उसमें विलायत से लौट कर जवाहरलालजी सम्मिलित हुये। यह अनुभव

हो रहा था कि देश में जवानी बढ़ रही है, देशभक्तों के हृदयों में एक और स्वर सुनाई दे रहा है, जैसे वह प्रकट करना चाहते हैं, परन्तु नहीं जानते कि किन शब्दों में प्रकट करें। ठीक उस समय जवाहरलालजी योरप से एक नया सन्देश लेकर आये। वह सन्देश निश्चित रूप से क्या था, यह तो शायद उन्हें भी मालूम नहीं था, परन्तु हम उसे दो भावनाओं का मिश्रण कह सकते हैं। उनमें से मुख्य तो साम्राज्य के विरुद्ध गहरी भावना थी। साम्राज्य विरोधी सब ने उनके मन पर काफी असर डाला था। और वह अनुभव कर रहे थे कि भारत को साम्राज्य से नाता बिलकुल तोड़ देना चाहिये। दूसरी भावना जो साथ-साथ चल रही थी वह थी कि मनुष्य समाज के दुःखों का असली इलाज साम्यवाद के पास है। उनकी साम्यवादी प्रवृत्ति तो पहिले से ही थी, मास्को में जाकर जब उन्होंने सोवीट सरकार को काम में आते देखा तो साम्यवाद पर उनका विश्वास और भी बढ़ गया। इस प्रकार उस समय साम्यवाद से सना हुआ साम्राज्य विरोध उनके मन का मुख्य भाव था।

मद्रास की कांग्रेस में जवाहरलालजी ने अपने उन भावों को प्रस्तावों के रूप में प्रकट किया। जो प्रस्ताव उनके जोर देने से पास किये गये, उनमें से एक तो यह था कि कांग्रेस का ध्येय भारतवर्ष की पूर्ण स्वाधीनता है और दूसरा

प्रस्ताव यह था कि कांग्रेस को साम्राज्य विरोधी सङ्घ से सम्बन्ध जोड़ लेना चाहिये।

देश भर मे नवीन विचारों की जागृति बड़े वेग से हो रही थी। उसके कई चिन्ह थे। स्थान-स्थान पर नौजवान भारत सभाओं और यूथलीगों की स्थापना हो रही थी। मजदूरों को सङ्गठित करने के लिये कई सभायें और सङ्घ बन रहे थे। किसानों के सगठन का आन्दोलन भी कई प्रान्तों में जारी हो गया था। कई दिशाओं मे, और कई रूपों में, नये उत्थान का प्रवाह बहता दृष्टिगोचर होता था। जवाहरलालजी एक नया प्रकाश लेकर बाहर से आये थे, इससे युवक भारत उनकी ओर टिकटिकी लगाये देख रहा था और समझ रहा था कि फैले हुये अकर्मण्यता के अन्धकार मे वही प्रकाश की किरणों को सचालित करेंगे।

इधर सरकार अपनी मूर्खताओं से राष्ट्रीय जागृति मे सहायता देने का श्रेय लूट रही थी। भारत के भावी शासनविधान के सम्बन्ध में रिपोर्ट करने के लिये ब्रिटिश-पार्लमेंट ने एक कमीशन बनाया था, जो साइमन कमीशन के नाम से पुकारा जा रहा था। वह केवल गोरों का कमीशन था। देश के प्राय सभी राजनीतिक दलों ने उसका विरोध किया, परन्तु अंग्रेज किसी की सुनने वाले नहीं। वह कमीशन भारत मे भेजा ही गया।

देश ने उसका बहिष्कार करने का निश्चय किया। प्राय सभी बड़े नगरों मे उस कमीशन का काले झण्डों और हड़ताल से

स्वागत किया गया। जहाँ यह जाता, 'साइमन वापिस जाओ' के नारे आकाश को गुंजाने लगते। इस देश व्यापी प्रतिवाद के शब्द को सुनकर सरकार घबरा गई, और उसने कई स्थानों पर लाठी और गोली से उस शब्द को दबाने की चेष्टा की। साइमन कमीशन के दौरे के प्रसंग में कई ऐसी घटनायें हुई जो भारत के नैतिक इतिहास मे स्मरणीय रहेंगी। लाहौर में पुलिस ने लाठी प्रहार किया, जिस से ला० लाजपतराय के ऐसी गहरी चोट लगी कि वह उनकी मृत्यु का कारण हुई। लखनऊ के प्रतिवादी दल के नेता पं० जवाहरलाल और पं० गोविन्दवल्लभ पन्त थे। दोनों ही नेताओं के दलों ने बड़ी वीरता से घुड़सवार पुलिस और फौज के आक्रमणों का सामना किया। दोनों के गहरी चोटें आईं, परन्तु किसी ने भी मैदान छोडने का नाम न लिया। अपने स्थान पर पर्वतों की तरह जमे रहे। मारने वाले हाथ थक गये, पर वीरों ने अपना स्थान न छोड़ा।

साइमन कमीशन की यात्रा अपने पीछे बहुत बड़ी स्मृति छोड़ गई। वह सरकार के मार्ग में खूब कांटे बिछा गई। उस के जाने के पश्चात् देश का वातावरण अधिक से अधिक गर्म होता गया। कलकत्ते की कांग्रेस में महात्मा गान्धी और पं० मोतीलाल नेहरू के सम्मिलित प्रयत्न से किसी प्रकार औपनिवेशिक ढंग से राज्य का प्रस्ताव स्वीकार हो सका, अन्यथा पूर्ण स्वाधीनता के प्रस्ताव का स्वीकृत हो जाना कुछ कठि

नहीं था। जवाहरलालजी में सदा एक निर्बलता रही है। जहां महात्मा गांधी उनके विरुद्ध हो, वहां वह झुक जाते हैं। कलकत्ते में उनके पूर्ण स्वाधीनता सम्बन्धी प्रस्ताव के स्वीकार हो जाने की पूरी आशा थी, यदि महात्माजी अपने उदार और नरम हथियारों से जवाहरलालजी को निर्जीव करके न डाल देते। कलकत्ते में सरकार को एक वर्ष का मौका दिया गया था कि या तो वह उनमें देश की सम्मिलित मांग को पूरा करे, अन्यथा कांग्रेस पूर्ण-स्वाधीनता के आदर्श की घोषणा कर देगी।

आखिर वह एक वर्ष भी समाप्ति पर आ पहुंचा। उस वर्ष कांग्रेस का अधिवेशन लाहौर में होने वाला था। देश का बहुमत महात्मा गांधी को प्रधान बनाने के पक्ष में था, परन्तु महात्माजी किसी तरह भी इसके लिये तैयार न हुए। तब आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी ने निश्चय किया कि प० जवाहरलाल नेहरू लाहौर कांग्रेस के अध्यक्ष बनाये जाय। सारे देश ने इस निश्चय का हर्ष से स्वागत किया। देश जिस साहसिक नेतृत्व की इच्छा रखता था, उसकी उसे जवाहरलालजी से ही आशा थी। परन्तु पहले इसके कि हम लाहौर में पहुंच कर भारत के आकाश पर नये सुर्योदय का वृत्तान्त सुनायें, हमें थोड़ी देर के लिये दिल्ली में रुक जाना पड़ेगा। भारत के वायसराय लार्ड अर्विन ने विलायत से लौट कर एक घोषणा की,

जिसमें यह आशा दिखाई कि भारत को औपनिवेशिक ढग का शासन मिल जायगा और शासनविधान पर विचार करने के लिये एक गोलमेज कान्फरन्स बुलाई जायगी, जिसमें सभी विचारों के भारतवासी निमन्त्रित किये जायेंगे। इस घोषणा को बहुत महत्वपूर्ण समझ कर विचार करने के लिये सब राजनीतिक दलों के नेता दिल्ली में इकट्ठे किये गये। कांग्रेस, लिबरल और मुस्लिम लीग सब के प्रतिनिधियों ने मिल कर एक वक्तव्य तैयार किया, जिसमें घोषणा पर सन्तोष प्रगट करते हुये वह शर्तें पेश की गई थीं, जिनके स्वीकार कर लेने पर भारतवासी गोलमेज कान्फरन्स में बैठने को उद्यत हो सकेंगे। उस वक्तव्य पर महात्मा गांधी और पं० मोतीलालजी के साथ साथ सर तेजबहादुर सप्रू और मि० जिना के भी हस्ताक्षर थे। इससे समझा जा सकता है कि यह वक्तव्य न तीतर था न बटेर। सब के विचारों का प्रतिनिधि बनने की चेष्टा मे यह किसी के विचारों का प्रतिनिधि भी न रह सका।

पं० जवाहरलाल नेहरू और श्री सुभाषचन्द्र बोस से भी उस वक्तव्य पर हस्ताक्षर करने को कहा गया। पहले तो दोनों ने इन्कार किया, परन्तु महात्माजी के बहुत समझाने से और आग्रह पर जवाहरलालजी ने उस पर हस्ताक्षर कर दिये। कहते हैं कि जवाहरलालजी पर उन हस्ताक्षरों का ऐसा बोझ पड़ा था कि कई रातों तक वह नींद नहीं ले सके। एक बार तो दु खी होकर

उन्होंने महात्माजी को लिख दिया था कि मैं कांग्रेस का प्रधान नहीं बन सकूंगा। पर महात्माजी की बात को न मानना या उन्हें दु:खी करना जवाहरलालजी की शक्ति से बाहर है। जवाहरलाल जी ने हस्ताक्षर भी कर दिये और प्रधान भी बने। उधर वायसराय ने उन बिल्कुल नर्म शर्तों को मानने से इन्कार कर दिया, इस कारण लाहौर में राष्ट्रीय गाड़ी के पूरे वेग से चलने के रास्ते में कोई विघ्न न रहा।

लाहौर में जवाहरलाल जी का बहुत शानदार स्वागत हुआ। उनके माता पिता पुत्र की लोकप्रियता पर फूले न समाते थे। जब जलूस उस मकान के नीचे से गुजरा, जहां पण्डित मोतीलालजी सपत्नीक बैठ हुये लड़के के जुलूस को देख रहे थे, तो जवाहरलालजी की माता ने रुपयों की वर्षा करके अपने हृदय के उल्लास को प्रगट किया था। उस दिन माता को अपने पुत्र की तपस्या के कारण हुए सब क्लेश भूल गये थे।

अधिवेशन में भी जवाहरलालजी को पूरी सफलता प्राप्त हुई। ३१ दिसम्बर को रात के १२ बजे ठीक एक वर्ष व्यतीत हो जाने पर कांग्रेस ने हर्षसूचक जयकारों के मध्य में इस आशय का प्रस्ताव स्वीकार किया कि कांग्रेस का लक्ष्य भारतवर्ष के लिये पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करना है।



(१०)

जेल के अन्दर और बाहर

अब हम जवाहरलालजी के जीवन के उस भाग पर आते हैं जिसे हम उनका जेल जीवन कह सकते हैं। जेल तो वह इससे पूर्व भी गये थे, परन्तु अब तो जेल उनका घर बनने वाला था। जेल उनका स्थायी निवास स्थान बन रहा था और बाहर की दुनियां कभी-कभी तफ़रीह का स्थान।

लाहौर की कांग्रेस ने देश के वातावरण को खूब उत्तेजित और जानदार बना दिया। जनता में जागृति पैदा हो रही थी। उस में देश की स्वाधीनता के लिये कुछ न कुछ करने की इच्छा उत्पन्न हो गई थी। देश में क्रान्ति का सा वातावरण पैदा हो रहा था।

वह तूफान, जो रावी के तट पर एक हाथ भर का सा दिखाई देता था, शीघ्र ही आकाश में फैलने लगा, यहाँ तक कि १६२६ की समाप्ति के पूर्व ही वह चारों दिशाओं में फैल गया। वह तूफान नमक सत्याग्रह के रूप में अवतीर्ण हुआ। महात्मा गांधी उस तूफान के अगुआ थे। उन्होंने सच्चे सत्याग्रही की भांति भारत के वायसराय को सूचना दी कि या तो भारतवासियों की मांग पूरा करो, अन्यथा हम नमक कानून को तोड़ कर सत्याग्रह युद्ध को जारी कर देंगे। वायसराय का उत्तर तो निश्चित ही था। इन्कार पाकर महात्माजी ने युद्ध का शङ्ख बजा दिया और समुद्र तट पर नमक कानून को तोड़ने के लिये सत्याग्रहाश्रम से दण्डी यात्रा प्रारम्भ कर दी। इस प्रकार वह संग्राम प्रारम्भ हुआ, जिस ने संसार को अहिंसात्मक कानून-भंग के चमत्कार दिखा कर आश्चर्य में डाल दिया था।

इलाहाबाद में अप्रैल १६३० के दूसरे सप्ताह में नमक-सत्याग्रह प्रारम्भ हुआ। १४ अप्रैल को जवाहरलालजी गिरफ्तार हो गये। जेल में ही उनका मुकदमा हुआ। सत्याग्रह में कोई सफाई तो दी ही नहीं जाती, केवल वक्तव्य दिया जाता है। जज ने आपको दोषी ठहराया और ६ महीने जेल की सजा दी। आप गिरफ्तारी के समय कांग्रेस के प्रधान थे। अपने पीछे कार्य को चलाने के लिये आपने पं० मोतीलालजी को प्रधान निर्वाचित कर दिया। यह भी मजेदार मामला हुआ कि लाहौर में पिता ने

पुत्र को कांग्रेस की गद्दी सौंपी थी, और अब पुत्र ने पिता को वापिस कर दी। प्रारम्भ में आपको अकेले ही जेल में रहना पड़ा। परन्तु थोड़े ही दिनों पीछे प० मोतीलालजी और डा० महमूद भी उसी बैरक में आगये और इस प्रकार काफ़ी रौनक हो गई। सत्याग्रह संग्राम की यह पहली सज़ा ११ अक्तूबर को समाप्त होगई और आप जेल से रिहा हो गये।

परन्तु देर तक बाहिर रहना असम्भव था। संग्राम जारी था, और जवाहरलालजी संग्रामकाल में चुप होकर नहीं बैठ सकते थे। आपको केवल इतना समय मिला कि मसूरी जाकर अपने बीमार पिता को देख सकते। जब आप तीन दिन के पीछे मसूरी से लौट रहे थे तो पहले देहरादून में और फिर लखनऊ में सरकारी नोटिस आपके पीछे-पीछे घूम रहा था। इलाहाबाद आकर आपको इतना ही अवसर मिला कि प्रांत के किसानों की एक विराट् सभा करके उन्हें करबन्दी का आदेश दे सकें। अभी जेल से आये हुये मैले कपड़े धुलने भी न पाये थे कि केवल ८ दिन बाहिर रह कर आप फिर गिरफ़्तार कर लिये गये, और नैनी जेल में पुराने साथियों के पास भेज दिये गये। इस बार आपको लम्बी सज़ा दी गई। २ वर्ष की सख्त जेल और ७००) जुर्माना, जुर्माना न देने पर ५ महीने की और जेल। प्रकार सब मिला कर २ साल ५ महीने की सज़ा हुई।

परन्तु यह सजा पूरी नहीं भोगनी पड़ी। १६३१ के आरम्भ में भारत का वातावरण सरकार और कांग्रेस में सुलह की बात चीत के समाचारों से भर गया था। प्रारम्भ किधर से हुई, यह मालूम नहीं, परन्तु उस बातचीत का श्रेय प्राय सर तेजबहादुर सप्रू और मि० जयकर को ही दिया गया। यह जोड़ा सप्रू जयकर के नाम से मशहूर हो गया था। उधर पं० मोतीलालजी का स्वास्थ्य प्रतिदिन गिरता जा रहा था। पिता की बीमारी और सुलह की बातचीत का सहारा लेकर सरकार ने २६ जनवरी १६३१ के दिन जवाहरलालजी को रिहा कर दिया।

१६३१ का वर्ष वायसराय और महात्मा गांधी की सुलह की बातचीत, तथा सधि और गोलमेज कान्फ्रेन्स में सम्मिलित होने के लिये महात्माजी की विलायत-यात्रा में व्यतीत हो गया। इधर जवाहरलालजी को पहले पिता की और कमलाजी की बीमारी की चिन्ता में व्यस्त रहना पड़ा। पं० मोतीलालजी की ६ फरवरी को मृत्यु हो गई। इसके पीछे स्वास्थ्य सुधार के लिये जवाहरलालजी ने पत्नीसहित सीलोन की यात्रा की, जिससे दोनों के स्वास्थ्य को बहुत लाभ हुआ।

१६३१ की समाप्ति होने से पूर्व ही देश का वातावरण फिर गर्म होने लगा। महात्माजी गोलमेज कान्फ्रेंस से बिलकुल निराश हो कर भारत लौट रहे थे। इधर सरकार का दमन-चक्र सरहद में, बंगाल में और अन्य स्थानों पर भी पूरे ज़ोर

से घूम रहा था। संयुक्त प्रान्त में किसानों की ऐसी दुर्दशा थी कि जवाहरलालजी के नतृत्व में कांग्रेस ने उन्हें कर-बन्दी की सलाह दी थी। ऐसी दशा में देर तक जवाहरलालजी स्वतन्त्र कैसे रह सकते थे। महात्माजी के भारत में आने से पूर्व ही सरकार ने संग्राम की रंगस्थली तय्यार कर दी थी। जवाहर-लालजी को आज्ञा दी गई कि वह इलाहाबाद म्युनिसिपलिटी की सीमा से बाहर नहीं जा सकते। जवाहरलालजी भला ऐसे प्रतिबन्ध को कहां सह सकते थे? उन्होंने डिस्ट्रिक्ट मेजिस्ट्रेट को लिख दिया कि मैं तुम्हारी आज्ञा की उपेक्षा करूंगा, और २६ दिसम्बर को मि० शेरवानी और वह बम्बई का टिकट लेकर रेल पर सवार हो गये, तथा गिरफ्तार कर लिये गये। मि० शेरवानी को जिस जुर्म में ६ महीने की जेल की सजा मिली, जवाहर-लालजी उसी अपराध में २ वर्ष कारागार के अधिकारी समझे गये। ५००) जुर्माना भी मांगा गया था।

इस बार प्रारम्भ में वह बरली के जेल में रखे गये और फिर गर्मी के दिनों में देहरादून तबदील कर दिये गये। सजा के शेष दिन आपने वहीं व्यतीत किये, और माता की सख्त बीमारी के कारण ३० अगस्त १९३३ के दिन, समय से पूर्व ही वह रिहा कर दिये गये।

आन्दोलन शिथिल हो चुका था और सरकार भी ढीली पड़ गई थी, इससे आशा थी कि शायद इस बार जवाहरलालजी

परन्तु यह सज़ा पूरी नहीं भोगनी पड़ी। १९३१ के आरम्भ मे भारत का वातावरण सरकार और कांग्रेस मे सुलह की बात चीत के समाचारों से भर गया था। प्रारम्भ किधर से हुई, यह मालूम नहीं, परन्तु उस बातचीत का श्रेय प्राय सर तेजबहादुर सप्रू और मि० जयकर को ही दिया गया। यह जोडा सप्रू जयकर के नाम से मशहूर हो गया था। उधर पं० मोतीलालजी का स्वास्थ्य प्रतिदिन गिरता जा रहा था। पिता की बीमारी और सुलह की बातचीत का सहारा लेकर सरकार ने २६ जनवरी १९३१ के दिन जवाहरलालजी को रिहा कर दिया।

१९३१ का वर्ष वायसराय और महात्मा गांधी की सुलह की बातचीत, तथा सन्धि और गोलमेज कान्फरेन्स मे सम्मिलित होने के लिये महात्माजी की विलायत-यात्रा मे व्यतीत हो गया। इधर जवाहरलालजी को पहले पिता की और कमलाजी की बीमारी की चिन्ता म व्यस्त रहना पडा। पं० मोतीलालजी की ६ फरवरी को मृत्यु हो गई। उसके पीछे स्वास्थ्य सुधार के लिये जवाहरलालजी ने पत्नीसहित सीलोन की यात्रा की, जिससे दोनों के स्वास्थ्य को बहुत लाभ हुआ।

१९३१ की समाप्ति होने से पूर्व ही देश का वातावरण फिर गर्म होने लगा। महात्माजी गोलमेज कान्फ्रेंस से बिलकुल निराश हो कर भारत लौट रहे थे। इधर सरकार का दमन-चक्र सरहद में, बंगाल में और अन्य स्थानों पर भी पूरे ज़ोर

से घूम रहा था। संयुक्त प्रान्त में किसानों की ऐसी दुर्दशा थी कि जवाहरलालजी के नेतृत्व में कांग्रेस ने उन्हें कर-बन्दी की सलाह दी थी। ऐसी दशा मे देर तक जवाहरलालजी स्वतन्त्र कैसे रह सकते थे। महात्माजी के भारत में आने से पूर्व ही सरकार ने संग्राम की तय्यारियाँ तय्यार कर दी थीं। जवाहरलालजी को आज्ञा दी गई कि वह इलाहाबाद म्युनिसिपलिटी की सीमा से बाहर नहीं जा सकते। जवाहरलालजी भला ऐसे प्रतिबन्ध को कहाँ सह सकते थे? उन्होंने डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट को लिख दिया कि मैं तुम्हारी आज्ञा की उपेक्षा करूँगा, और २६ दिसम्बर को मि० शेरवानी और वह बम्बई का टिकट लेकर रेल पर सवार हो गये, तथा गिरफ्तार कर लिये गये। मि० शेरवानी को जिस जुर्म में ६ महीने की जेल की सज़ा मिली, जवाहरलालजी उसी अपराध मे २ वर्ष कारागार के अधिकारी समझे गये। ५००) जुर्माना भी माँगा गया था।

इस बार प्रारम्भ मे वह नैनी के जेल में रखे गये और फिर गर्मी के दिनों में देहरादून तबदील कर दिये गये। सजा के शेष दिन आपने वहीं व्यतीत किये, और माता की सख्त बीमारी के कारण ३० अगस्त १९३३ के दिन, समय से पूर्व ही वह रिहा कर दिये गये।

आन्दोलन शिथिल हो चुका था और सरकार भी ढीली पड़ गई थी, इससे आशा थी कि शायद इस बार जवाहरलालजी

को शीघ्र जेल न जाना पड़ेगा, परन्तु जवाहरलालजी देश की परिस्थिति से परेशान थे और सरकार जवाहरलालजी की बढ़ती हुई साम्यवादी प्रवृत्ति से परेशान थी। देर तक निर्वाह होना कठिन ही था। १५ जनवरी को बिहार में भूकम्प हुआ। आप अपनी माता के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में अच्छे डाक्टरों की सलाह लेने कलकत्ते गये थे। वहीं आपने एक व्याख्यान में वर्तमान परिस्थिति पर अपने विचार प्रकट किये। कलकत्ते से आप पटना गये और वहाँ से बा० राजेन्द्रप्रसाद के साथ जाकर भूकम्प पीड़ित स्थानों का निरीक्षण किया। मुंगेर में तो आपने फावड़ा उठा कर खण्डहरात को खोदने का काम भी जारी कर दिया था। इस प्रकार भूकम्प पीड़ितों की सेवा के काय को सचेत करके आप इलाहाबाद पहुंचे ही थे कि पुलिस का अफसर गिरफ्तारी का परवाना लेकर आ पहुंचा और जवाहरलालजी गिरफ्तार करके कलकत्ते ले जाये गये। गिरफ्तारी कलकत्ते के भाषण पर ही हुई थी। यह गिरफ्तारी १२ फ़रवरी १९३४ को हुई।

इस बार फिर दो वर्ष जेल की सज़ा मिली। प्रारम्भ में कुछ दिनों तक आपको अलीपुर जेल में रक्खा गया, परन्तु जब वह स्वास्थ्य बिगड़ने लगा, तब ७ मई को देहरादून जेल में भेज दिये गये। जब कमलाजी अधिक रोगी हो गईं, तब जवाहरलालजी को फिर इलाहाबाद लेजाकर ११ दिन के लि

रिहा किया गया। कमलाजी को जब डाक्टरों ने भुवाली के सैनीटोरियम में भेजने की सलाह दी, तब उनके पास रहने के लिए जवाहरलालजी अलमोड़ा जेल में भेजे गये और फिर कमला जी का स्वास्थ्य अधिक ही अधिक बिगड़ता गया, यहाँ तक कि उन्हें १९३५ के मई मास में इलाज के लिए यूरोप ले जाना पड़ा।

योरप जाकर भी कमलाजी के स्वास्थ्य में कोई विशेष उन्नति न दिखाई दी, तब ३ सितम्बर १९३५ को सरकार ने जवाहरलालजी को अपनी पत्नी के पास विलायत जाने के लिए जेल से मुक्त कर दिया। अगले ही दिन ४ सितम्बर को आप हवाई जहाज़ से वियाना के लिए रवाना होगये।

इस प्रकार १९३० और १९३५ के बीच में ५ वर्ष जवाहर-लालजी ने अधिकतर जेल में और कम समय बाहर व्यतीत किया।



फिर कांग्रेस की गद्दी पर

जवाहरलालजी के वियाना पहुंचने पर यह आशा हुई थी कि कमलाजी का स्वास्थ्य सुधर जायगा, परन्तु प्रतीत होता है कि बीमारी गहराई तक पहुंच चुकी थी। उस पतिव्रता ने गृहस्थ-जीवन के १८ वर्ष जिन चिन्ताओं और व्यथाओं में व्यतीत किये थे, उन्हें आज प्रत्येक भारतवासी जानता है।

जवाहरलालजी का ६६ फीसदी हृदय देश को मिल चुका था। पति के केवल १ फीसदी हृदय से क्या कोई युवती सुखी रह सकती है ? परन्तु उस देवी के मुंह पर न कोई शिकायत थी, और न उदासी। एक ही इच्छा थी कि पति के चरणचिन्हों पर चल कर अपने जीवन को सफल बनाऊं, और यथासम्भव पति की सेवा कर सकूं। एक बार जब सत्याग्रह में हिस्सा लेती हुई आप गिरफ्तार हुईं तो आपने देश के नाम जो संदेश दिया था, उसमें कहा था कि आज मैंने अपने पति के चरण चिन्हों पर चलने की अभिलाषा को पूरा कर लिया है। कमलाजी ने देश को बहुत कुछ दिया था। अपना शरीर दिया, अपना मन दिया, और सबसे उत्तम वस्तु जो उस मानिनी रमणी ने दी, वह अपना सर्वस्व—अपना पति—था। कमलाजी जवाहरलालजी के सांग्रामिक मार्ग में कभी कण्टक नहीं बनीं।

जब जवाहरलालजी कमलाजी के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में बहुत चिंतित होने लगे, तब उनके सामने प्रस्ताव रखा गया कि यदि दण्ड-काल में किसी राजनीतिक काम में भाग न लेने का वायदा करो, तो मुक्त किये जा सकते हो। उस समय जिस व्यक्ति ने आश्वासन देने का सब से अधिक विरोध किया, वह कमलाजी थीं। तेज बुखार में पड़ी थीं। इशारे से जवाहरलालजी को पास बुलाया और कान पर मुंह लगाकर कहा कि आश्वासन देने की क्या बात चल रही है ? देखना, कोई आश्वासन न देना।"

ऐसी वीरांगना भाग्यों से मिलती है। प० जवाहरलालजी भाग्यशाली हैं कि उन्हें प० मोतीलालजी जैसे पिता, श्रीमती स्वरूपरानी जैसी माता और कमलाजी जैसी पत्नी मिलीं।

कमलाजी का शरीर बहुत क्षीण हो चुका था। योरोप का जलवायु, योरोप की डाक्टरी का इलाज और पति की उपस्थिति भी उनके जीवन को न बचा सकीं। वह देशभक्ता पतिपरायणा वीर रमणी २८ फरवरी सन् १९३६ के दिन इस लोक के बन्धनों से मुक्त होकर उस लोक में चली गई, जहां सती स्त्रियों का उचित स्थान है। पति के हाथों में प्राण-त्याग करना स्त्री का परम-सौभाग्य समझा जाता है। कमलाजी को वह भी प्राप्त हो गया।

इधर कांग्रेस का अधिवेशन समीप आ रहा था। देश को उसके लिये प्रधान का चुनाव करना था। कुछ वर्ष पूर्व कांग्रेस के प्रधान का चुनाव केवल एक रिवाजी वस्तु थी, परन्तु अब देश अपने राष्ट्रपति से उसका सर्वस्व मांगता है। वही व्यक्ति राष्ट्रपति पद पर बिठाया जा सकता है, जिस का एक २ क्षण देश के अर्पित हो। इस दृष्टि से ही राष्ट्रपति का चुनाव काफी कठिन काम था, परन्तु एक और उलझन ने तो उसे बहुत ही विकट बना दिया था। महात्मा गांधी राजनीति से अलग हो चुके थे। गत १५ वर्षों तक उन्होंने कांग्रेस द्वारा देश की किश्ती के पतवार को सम्हाला था। उनके नेतृत्व में देश ने बहुत उन्नति की, इसमें सन्देह नहीं परन्तु दो तीन वर्षों से महात्माजी, अनुभव कर रहे

थे कि वह और देश पूरी तरह एकमत नहीं रहे, इसलिये एक मार्ग पर चल भी नहीं सकते। इन वर्षों में जो महानुभाव प्रधान बनते रहे हैं, वह महात्माजी के अनुयायी ही रहे हैं। इस वर्ष महात्माजी चण्दू पर से अपना हाथ छोड़ना चाहते थे, और देश भी परिवर्तन के लिये उत्सुक था। ऐसे कठिन समय में महात्मा गांधी की दूरदर्शिता और समझदारी ने देश की मुसीबत का हल बत लाया। महात्माजी ने प्रधान पद के लिये जवाहरलालजी का नाम पेश किया और देश ने उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया।

कमलाजी के अवशेष मात्र को लेकर अकेले जवाहरलालजी १० मार्च को अपने देश में वापस आ गये। राष्ट्र ने उनको लखनऊ में होने वाली कांग्रेस के प्रधानपद को सुशोभित करने के लिये चुनाव किया। राष्ट्र ने यह चुनाव बड़ी आशा से किया था। एक ऐसे सिपाही की जरूरत थी जो भूतकाल की जन्जीरों को तोड़ कर देश को नया रास्ता दिखा सके, जो १५ साल की लीक को छोड़ कर नई लीक पर चलने का साहस करे और जो कांग्रेस को अमीरों के साथ २ गरीबों की, मजदूरों और किसानों की भी प्रतिनिधि बना सके। देश जवाहरलालजी से एक नये जोरदार तूफानी नेतृत्व की आशा रखता था। हर्ष की बात है कि जवाहरलालजी भी देश की इस भावना से परिचित हैं।



(११)

लखनऊ कांग्रेस

कांग्रेस का अधिवेशन लखनऊ मे अप्रैल (१९३६) के दूसरे सप्ताह में होने वाला था। देश ने बहुत बडे अधिक मत से प० जवाहरलाल जी को उसके सभापतित्व के लिये निर्वाचित किया। इतनी छोटी उम्र मे ऐसे कठिन समय मे दूसरी बार राष्ट्रपति चुने जाना कोई छोटी बात नहीं थी। यह स्पष्ट था कि देश को अपने मुल्क के नेता पर अपरिमित विश्वास था। देश समझता था कि वर्तमान भवर में से वही नौका को निकाल सकेगा।

इधर प० जवाहरलाल जी एक कठिनाई का अनुभव कर रहे थे। वह कई वर्षों तक भारत के राजनीतिक प्रवाह से अलग

प्रयाग से रहे थे। या तो वह जेल में रहे या विदेश में। इस लिए राजनीति का यह केवल कागज़ी अध्ययन हो कर सके थे। जनता की अपनी दशा का, और लोकमत के वास्तविक मुकाव का इन्हें व्यक्तिगत अनुभव नहीं था। देश के नेताओं से मिलने तक का इन्हें अवसर नहीं मिला था।

इस अभाव की पूर्ति के लिये मार्च मास के अन्त में दिल्ली की कांग्रेस की कार्यकारिणी का एक विशेष अधिवेशन बुलाया गया। दिल्ली उन दिनों भारतवर्ष के राजनीतिक जीवन का केन्द्र बना हुआ था। महात्मा गांधी हरिजन बस्ती में ठहरे हुए थे। असेम्बली का अधिवेशन हो रहा था, जिस कारण से नई दिल्ली में देश के राजनीतिक दिमाग एकत्र हो रहे थे। उन्हीं दिनों कांग्रेस कार्यसमिति का अधिवेशन दिल्ली में बुला लिया गया।

प० जवाहरलालजी प्रातःकाल एक्सप्रेस से दिल्ली पहुंचे। दिल्ली निवासियों के हृदय अपने तपस्वी राष्ट्रपति के स्वागत के लिये उमड़े पड़ते थे। शहर सजाया जा रहा था, और जलूस की पूरी तय्यारी हो चुकी थी, परन्तु प० जवाहरलालजी का पत्नी वियोग से खिन्न हृदय इस प्रदर्शन को सहने के लिये तय्यार न हुआ। जलूस का विचार छोड़ना पड़ा। आप ने केवल इतना स्वीकार किया कि मोटर पर सवार होकर सारे शहर में से गुज़र गये, ताकि जनता सर्वथा निराश न हो।

लगभग एक सप्ताह तक हरिजन बस्ती में नेताओं का परा
र्श होता रहा। प० जवाहरलालजी ने महात्मा गांधी, सर-
ार वल्लभभाई पटेल, डा० राजेन्द्रप्रसाद आदि सब नेताओं से
ेश्वासपूर्वक वार्तालाप किया, और देश की दशा को जानने की
ष्टा की। देश भर की आँखें उन दिनों दिल्ली की ओर लगी हुई
ीं। अकस्मात् पं० मदनमोहन मालवीयजी भी दिल्ली पधार
ये, और बिडला हाउस में ठहरे। प० जवाहिरलालजी तथा
न्य कांग्रेसी नेता बिडला हाउस में जाकर मालवीयजी से मिले,
ौर नेशनलिस्ट पार्टी को कांग्रेस में मिला देने की सम्भावना
र विचार किया। इस प्रकार देश की वर्तमान परिस्थिति से
ुत कुछ परिचित होकर एक सप्ताह के पश्चात जवाहरलालजी
खनऊ कांग्रेस के लिये अपना प्रारम्भिक भाषण तैयार करने
ाहाबाद से रवाना हो गये।

६ अप्रैल को स्वराज्य भवन में कांग्रेस की कार्यसमिति का
धिवेशन हुआ, उसमें कांग्रेस के सामने आने वाले प्रस्तावों
रूप निर्धारित किया गया। इस समय तक प० जवाहिरलाल
अपने विचारों को बहुत कुछ स्थूल रूप दे चुके थे। कार्यसमि-
के सामने जो प्रस्ताव पेश हुये, उन में से कई जवाहरलालजी
दीर्घ चिन्तन के फल थे, उनमें से दो मुख्य थे। एक तो विदेशों
राष्ट्रीय आन्दोलन के समाचार पहुंचाने के सम्बन्ध में, और
दूरों तथा किसानों के साथ कांग्रेस के सम्बन्ध को दृढ़

करने क सम्बन्ध में। समिति में आपने आगामी शासनविधान में कांग्रेसी लोगों के ओहदे लेने का भी विरोध किया, परन्तु समिति इस समय कोई आखिरी निर्णय करने को तैयार नहीं था, इसलिये मामला खटाई म पड गया। इलाहाबाद में वर्किंग कमेटी का जो अधिवेशन हुआ, उसमें सब से बड़ी बात यह हुई कि पंडितजी को अपनी स्थिति समझने का अवसर मिला। कार्य-समिति का अधिक मत पंडितजी क विशेष-साम्यवादी प्रस्तावों का विरोधी था।

उधर इलाहाबाद में कार्यसमिति कांग्रेस के प्रस्तावों की रूप रेखा बनाने म लगी हुई थी और इधर लखनऊ में राष्ट्रीय महासभा क अधिवेशन का रंगमञ्च तैयार हो रहा था। लखनऊ कांग्रेस की तैयारी में अनेक प्रकार के विघ्न उपस्थित हुए। स्वागतकारिणी क मार्ग म परस्पर झगड़ों के कारण पग पग पर विघ्न उपस्थित होते रहे, परन्तु अन्त में गत वर्ष के राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्रप्रसाद के प्रयत्न से किश्ती भवर से निकल कर किनारे के पास पहुच गई, और अधिवेशन की तारीखें आते आते कांग्रेस पण्डाल का ढांचा तैयार होकर खडा हो गया।

८ अप्रैल को मनोनीत राष्ट्रपति रेल द्वारा लखनऊ पहुचे। उसी दिन उनका जलूस निकाला गया। लखनऊ वालों ने दिल खोल कर अपने सम्मानित और लाड़ले राष्ट्रपति का स्वागत किया, और जलूस निकाला। शहर तोरणों और तिरंगी पता-

काओं से खूब सजाया गया था। उस नवाबी शहर ने नवाबी सजधज से देश के हृदय-सम्राट् का अभिनन्दन किया। पडितजी की इच्छानुसार उनका जलूस पैदल ही निकाला गया था। कुछ देर तक तो वह पैदल जलूस अच्छे सिलसिले से चला, परन्तु एक तो जनता की दर्शनाभिलाषा, और दूसरे नियन्त्रण का अभाव—शीघ्र ही पैदल जलूस असम्भव होगया। धक्के पर धक्का पडने लगा, और अन्त मे पडितजी को घोडे पर सवार होना पडा। सारे शहर मे घूम कर वह जलूस नामधारी जन समूह कांग्रेस-पण्डाल में पहुचा, और वहां कौमी नारे, और महात्मा गाधी तथा जवाहरलाल के जय-जयकारो में तितर बितर होगया। जलूस के समय में बहुत गर्द था, और उससे भी बहुत शोर था, और उस गर्द तथा शोर में जो एक वस्तु असन्दिग्ध रूप में चमक रही थी, वह जनता का प० जवाहरलाल से अगाध प्रेम था।

४ दिन तक कार्यसमिति और विषय निर्वाचिनी समिति का दौर रहा। कांग्रेस के खुले अधिवेशन के लिये प्रस्तावों का निर्माण होता रहा। इस प्रसग में कई बार पडितजी को प्रधान की हैसियत से अपने विचार प्रकट करने पडे। आपने अपने विचार बडी स्पष्टता से कहे। उनका झुकाव साम्यवादी था। प्राय विषय निर्वाचिनी सभा ने आपका साथ दिया, परन्तु कई विषयों पर वह आपके साथ सहमत न हो सकी। विषयनिर्वाचिनी ने

आपकी बात को सदा आदर से सुना, परन्तु सम्मति लेने के समय स्वतन्त्रता से काम लिया।

१२ अप्रैल को कांग्रेस का खुला अधिवेशन आरम्भ हुआ। पं० जवाहरलालजी के सभापतित्व ने उस अधिवेशन की शान को दुगुना कर दिया था। जनता में उत्साह भी था और उत्सुकता भी। लगभग एक लाख दर्शकों के जय-जयकार के मध्य में पं० जवाहरलालजी ने दूसरी बार कांग्रेस की गद्दी को सम्भाला। आपका प्रारम्भिक भाषण अपने ढंग का अनूठा था। उसमें आपने अपने हृदय को खोलकर रख दिया था। यह ठीक है कि उसमें जवाहरलालजी एक राजनैतिक दार्शनिक के रूप में दिखाई देते हैं, व्यावहारिक राजनीतिज्ञ के रूप में नहीं, परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि दार्शनिक नींव के बिना कोई राजनीतिज्ञ बहुत ऊंची सतह तक नहीं जा सकता। केवल व्यापार की सफलता पर जीने वाला राजनीतिक नेता जाति की किश्ती को दूर तक नहीं ले जा सकता महात्मा गांधी की यही विशेषता है कि उनकी राजनीति की नींव एक गहरे तत्वज्ञान पर है। पं० जवाहरलालजी को अपने अनुयायियों से ऊंचा बनाने वाली वस्तु भी यही है कि उन की नीति एक दार्शनिक भित्ति पर खड़ी हुई है। प्रारम्भिक भाषण में, आपने अपने व्यवहार की भित्ति का जिस स्पष्ट और विशद विवेचन कर दिया था। वह भाषण अविकल रूप से परिशिष्ट में दिया गया है।

मुझे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में प्रायः सभी रूप में स्वीकार किये गये, जिस में उन्हें विषयनिर्धारिणी ने स्वीकार किया था। उनमें से कुछ प्रस्ताव ऐसे थे, जिन पर पं० जवाहरलालजी की छाप थी। विदेशों में प्रचारण के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव किया गया था, वह पण्डितजी के आग्रह का ही फल था। महात्मा गांधी ने कांग्रेस के विदेशी विभाग को बिलकुल ही उड़ा दिया था। जनता के सम्पर्क के साथ कांग्रेस का सम्बन्ध को अधिक दृढ़ करने के उपायों पर विचार करने के लिये जो कमेटी बनाई गई थी, उसका प्रस्ताव भी पण्डितजी ने ही रखा था। शेष प्रस्ताव प्रायः वही थे, जिन्हें पुरानी कार्यसमिति स्वयं उपस्थित करती। यदि सर्वथा पं० जवाहरलालजी के हाथ में होता तो उन प्रस्तावों में कई परिवर्तन हो जाते, परन्तु अखिल भारतीय समिति और प्रतिनिधि मण्डल में कार्यसमिति का बहुमत था, इस कारण प्रस्तावों पर राष्ट्रपति की स्पष्ट मुहर न लग सकी।

ऐसी दशा में यदि कोई साधारण व्यक्ति होता तो उसके मन पर धक्का सा लगता, और उसके व्यवहार में खिन्नता आ जाती। इस में पं० जवाहरलालजी की महत्ता का सबसे बड़ा चिन्ह समझता हूँ कि उन्होंने इस प्रसंग में दिखाई पड़ने वाली आंशिक निष्फलता को अपनी आत्मिक शक्ति से चमत्कारी सफलता में परिणत कर लिया। कांग्रेस के मत को आपने जनता का शब्द समझा, और सिर झुका कर स्वीकार किया।

देशभक्ति के रस से सराबोर एक विशाल आत्मा के लिये ही यह सम्भव था। कांग्रेस के अधिवेशन में कई बार ऐसा प्रसङ्ग आया कि अ० भा० समिति या खुले अधिवेशन ने राष्ट्रपति के स्पष्ट निर्देश को स्वीकार नहीं किया, परन्तु राष्ट्रपति ने राष्ट्र के हरेक निर्देश को खुले दिल से स्वीकार किया। यह घटना प० जवाहर-लालजी के जीवन में सब से अधिक उज्ज्वल अक्षरों में लिखी जायगी।

अखिल भारतीय समिति और खुले अधिवेशन में भी कई छोटी छोटी ऐसी घटनायें हुईं, जिनसे प० जवाहरलालजी के चरित्र की विशेषता ही प्रकट होती थी। पण्डित जी अधीर हैं, और यही एक गुण उन्हें अपने समय के अन्य नेताओं से अलग करता है। वह राष्ट्रीय सेना की वर्तमान चाल से सन्तुष्ट नहीं। वह उस तेज करना चाहते हैं। युवक भारत में उनकी लोक-प्रियता का यही मूल कारण है। यह अधीरता कोई आगन्तुक चीज़ नहीं, वह पंडितजी के चरित्र का एक टुकड़ा है। यदि कोई वक्ता आपकी राय में चुका बोलता हो, या कोई गलत बात कर रहा हो, तो आप उसे बर्दाश्त नहीं कर सकते। उसे रोक देते हैं। यदि वह फिर भी जारी रहे, तो आप सभापति के आसन पर से उठ कर उसके सामने खड़े होकर भी उसे रोक देने में अपनी हतक नहीं समझते। इसे साधारण व्यवहार से पसन्द नहीं किया जाता, परन्तु आप साधारण हैं कहां?

लाउडस्पीकर के माइक्रोफोन को ठीक करने के लिये एक कारीगर स्टेज के पास खड़ा रहता है, परन्तु आवश्यकता होने पर आप उसकी इन्तिज़ार नहीं करते। सभापति के आसन पर से उठ कर स्वयम् ही माइक्रोफोन को ठीक करने लगते हैं। आपका मत है कि जो काम हम कर सकते हैं, उसे दूसर पर ही क्यों छोड़ें। आपका मत ठीक भी है। दूसरा सभापति सोचेगा कि माइक्रोफोन को ठीक करने मे मेरी हेठी होती है, परन्तु जवाहरलालजी अनुभव करते हैं कि मेरी ऊंचाई इतनी काफी है कि माइक्रोफोन को छूने से कम नहीं हो सकती।

कई वर्षों के निरन्तर जेलवास और प्रवास के कारण बाहिर असली जगत से जवाहरलालजी कुछ दूर से हो गये थे। लखनऊ की कांग्रेस ने वह दूरी दूर करदी। आपने असली जगत का अनुभव किया। आपने देश के लोकमत की तत्कालीन दशा को ठीक तरह देखा और समझा। उससे आप सचाई के अधिक समीप पहुंच गये, और आगामी वर्ष नेतृत्व करने के अधिक योग्य होगये।

साधारणतया लखनऊ कांग्रेस के निश्चय से देश सन्तुष्ट था, परन्तु कुछ लोग यह सन्देह प्रकट करते थे कि पं० जवाहरलालजी वर्ष भर गाड़ी को सफलता से चला सकेंगे या नहीं? क्योंकि यह निश्चय पूर्णरूप से पंडितजी को अभिमत नहीं थे। नई वर्किंग कमेटी में पंडितजी ने कुछ प्रतिनिधि साम्यवादी दल से भी

ले लिये थे, परन्तु तो भी अधिक भीस तो पुराने कांग्रेसियों का हीं रहा। सन्देह था कि यह जोड़, देर तक साथ साथ चल सकेगा या नहीं ?

(१२)

१९३६

कांग्रेस के जीवन में १९३६ का वर्ष अप्रैल के तीसरे सप्ताह में प्रारम्भ हुआ। उस वर्ष का अवतार सन्देहभरी आशा में हुआ। कांग्रेस की यह पद्धति रही है कि वर्ष का राष्ट्रपति कांग्रेस की नीति का प्रतिनिधि और वकील होता है। गया-कांग्रेस को छोड़ कर अन्य किसी अवसर पर भी कांग्रेस और उसके सभापति में मतभेद नहीं हुआ। लखनऊ में यह स्पष्टता से दिखाई दे रहा था कि राष्ट्रपति में और प्रतिनिधियों के बहुमत में कई आवश्यक विषयों पर भिन्नता है। जो नई कार्यसमिति बनी, उसमें भी अधिक संख्या उन्हीं लोगों की

जवाहरलालजी के खुले और निरन्तर साम्यवाद के समर्थन को हानिकारक या कम से कम अनावश्यक समझते थ।

यह कौन नहीं जानता कि स्पष्टवादिता प० जवाहरलालजी का विशेष गुण है। वह किसी नीति या डर से प्रेरित होकर अपनी सम्मति को दबा नहीं सकते। लोगों का सन्देह था कि आपका कार्यसमिति के साथ निबाह होगा या नहीं।

दूसरी ओर आशा भी बहुत थी। भारतवर्ष आशाभरी दृष्टि से आपके नेतृत्व की ओर देख रहा था। राजनीतिक वायु मण्डल मे पतझड का सा समा बध रहा था। वसन्त की आवश्यकता थी, जिसकी आशा केवल प० जवाहरलालजी मे थी।

इसे सर्वदा प० जवाहरलालजी की महानुभावता का सबूत समझा जायगा कि आपने लोगों के सन्देहों को निर्मूल सिद्ध करके आशाओं को बहुत दूर तक पूरा कर दिया। वर्ष के अन्त में जब हम इस वर्ष के राजनीतिक जीवन पर दृष्टि डालते हैं तो हमें कहना पडता है कि आपने वर्षभर में चमत्कार कर दिया है। तीन वर्ष पूर्व तक कांग्रेस के प्रधान का पद एक आभूषण समझा जाता था। बा० राजेन्द्रप्रसाद ने एक नया मार्ग निकाला, और एक नया रिवाज कायम किया। आपने अपनी कमजोर सेहत की पर्वा न करते हुए वर्षभर देश मे दौरा लगाया, और कोने कोने मे जाकर राष्ट्रीयता की जोत जगाई, जिससे देश में गर्मी कायम रही। प० जवाहरलालजी ने उसी पद्धति का अनु

करण किया, और वर्षभर अथक काम किया। केवल ८ महीनों के कांग्रेसी वर्ष में आपने ,जितना काम किया, उतना शायद ही कोई दूसरा आदमी काम कर सकता। भारत के प्राय हरेक प्रान्त में दौरा लगाया, कांग्रेस के सम्पूर्ण प्रबन्धसम्बन्धी कार्यों का निरीक्षण किया, बीसियों लम्बे छोटे वक्तव्य निकाले, और सम्पूर्ण राजनीतिक जीवन का मार्ग प्रदर्शन किया, और यह सब काम ऐसी सुन्दरता से किया कि सन्देहशील लोगों के सब सन्देह दूर हो गये।

यह दौरे भी अनूठे थे। समाचारपत्रों ने उन्हें तूफानी दौरे लिखा है, परन्तु यह शब्द भी उनकी पूरी शान का वर्णन नहीं कर सकता। तूफान कुछ घण्टों के लिये आता है, महीनों तक जारी नहीं रहता। यदि यह तूफान ही था, तो बहुत लम्बा और असाधारण तूफान था। एक एक दिन में बीस बीस जल्से, और सब में व्याख्यान, सुबह के ६ बजे से रात के ११ बजे तक भागदौड़ और परिश्रम, २४ घण्टों में सैकड़ों मीलों का मोटर का भ्रमण, और इसी काम को ८ महीनों तक जारी रक्खा था—क्या यह कार्य साधारण इच्छाशक्ति द्वारा पूरा हो सकता था?

रातदिन दौरे पर रहते हुए भी आपने देश की राजनीतिक बागडोर को ढीला नहीं होने दिया। उसे बड़ी सावधानता और [illegible] रखा। कोई ऐसी घटना हुई कि जिस पर

जवाहरलालजी के खुले और निरन्तर साम्यवाद के समर्थन को हानिकारक या कम से कम अनावश्यक समझते थे।

यह कौन नहीं जानता कि स्पष्टवादिता पं० जवाहरलालजी का विशेष गुण है। वह किसी नीति या डर से प्रेरित होकर अपनी सम्मति को दबा नहीं सकते। लोगों का सन्देह था कि आपका कार्यसमिति के साथ निबाह होगा या नहीं।

दूसरी ओर आशा भी बहुत थी। भारतवर्ष आशाभरी दृष्टि से आपके नेतृत्व की ओर देख रहा था। राजनीतिक वायुमण्डल में पतझड़ का सा समा बंध रहा था। वसन्त की आवश्यकता थी, जिसकी आशा केवल प० जवाहरलालजी से थी।

इस सर्वदा प० जवाहरलालजी की महानुभावता का सबूत समझा जायगा कि आपने लोगों के सन्देहों को निर्मूल सिद्ध करके आशाओं को बहुत दूर तक पूरा कर दिया। वर्ष के अन्त में जब हम इस वर्ष के राजनीतिक जीवन पर दृष्टि डालते हैं तो हमे कहना पडता है कि आपने वर्षभर में चमत्कार कर दिया है। तीन वर्ष पूर्व तक कांग्रेस के प्रधान का पद एक आभूषण समझा जाता था। बा० राजेन्द्रप्रसाद ने एक नया मार्ग निकाला, और एक नया रिवाज़ कायम किया। आपने अपनी कमजोर सेहत की पर्वा न करते हुए वर्षभर देश में दौरा लगाया, और कोने कोने में जाकर राष्ट्रीयता की जोत जगाई, जिससे देश में गर्मी कायम रही। प० जवाहरलालजी ने उसी पद्धति का अनु

करण किया, और वर्षभर अथक काम किया। केवल ८ महीनों के कांग्रेसी वर्ष में आपने जितना काम किया, उतना शायद ही कोई दूसरा आदमी काम कर सकता। भारत के प्राय हरेक प्रान्त में दौरा लगाया, कांग्रेस के सम्पूर्ण प्रबन्धसम्बन्धी कार्यों का निरीक्षण किया, बीसियों लम्बे छोटे वक्तव्य निकाले, और सम्पूर्ण राजनीतिक जीवन का मार्ग प्रदर्शन किया, और यह सब काम ऐसी सुन्दरता से किया कि सन्देहशील लोगों क सब सन्देह दूर हो गये।

यह दौर भी अनूठे थे। समाचारपत्रों ने उन्हें तूफानी दौरे लिखा है, परन्तु यह शब्द भी उनकी पूरी शान का वर्णन नहीं कर सकता। तूफान कुछ घण्टों के लिये आता है, महीनों तक जारी नहीं रहता। यदि यह तूफान ही था, तो बहुत लम्बा और असाधारण तूफान था। एक एक दिन में बीस बीस जल्से, और सब में व्याख्यान, सुबह के ६ बजे से रात के ११ बजे तक भागदौड और परिश्रम, २४ घण्टों में सैंकड़ों मीलों का मोटर का भ्रमण, और इसी काम को ८ महीनों तक जारी रक्खा था—क्या यह कार्य साधारण इच्छाशक्ति द्वारा पूरा हो सकता था?

रातदिन दौरे पर रहते हुए भी आपने देश की राजनीतिक बागडोर को कभी ढीला नहीं होने दिया। उसे बड़ी सावधानता और मजबूती से थामे रखा। कोई ऐसी घटना हुई कि जिस पर

देश को मार्गप्रदर्शन की आवश्यकता थी, तो आपने उस पर वक्तव्य निकाला, या कार्यसमिति का प्रस्ताव द्वारा उस पर सम्मति देने में कभी विलम्ब नहीं किया। अन्तर्राष्ट्रीय घटनाएँ तक आपके विचार के दायरे से बाहर नहीं रह सकीं। अबीसीनिया की स्वाधीनता पर इटली का आक्रमण, स्पेन में साम्यवाद और सत्त्ववाद का संघर्ष जैसी सर्वथा विदेशी घटनाओं पर सम्मति प्रकट करने की भी आपने देश को सलाह दी, और देश ने आपकी सलाह को माना।

आपके विचार साम्यवादी हैं। कार्यसमिति के विचार इससे भिन्न हैं। इससे भय था कि शायद दोनों देर तक न निभा सकें, परन्तु राष्ट्रपति की गद्दी पर बैठते ही आपने राष्ट्र की स्वाधीनता को प्रचार और आन्दोलन का मुख्य लक्ष्य बना लिया। आपने अपने व्याख्यानों में स्पष्ट रूप से यह घोषणा करदी कि हमारा पहला काम राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्त करना है, जब हम स्वाधीन हो जायँगे, तब साम्यवाद के सिद्धान्तों के अनुसार समाज का संगठन बनाने का यत्न करेंगे। इस घोषणा ने कांग्रेस की आंतरिक अशान्ति को एक दम शान्त करा दिया और हमारी राष्ट्रीय सेना एक इच्छा शक्ति से प्रेरित होकर, हर्षपूरित जयकार बोलती हुई आगे बढ़ने लगी।

देश ने आपका अद्भुत स्वागत किया। जनता ने जैसा प्रेम और सत्कार इससे पूर्व लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी के

लिये प्रदर्शित किया था, वैसा ही प० जवाहरलाल के लिये भी प्रदर्शित करके दिखा दिया कि बूढ़ा भारतवर्ष अब भी अपने हित पर बलिदान करने वालों को पहिचानता और आदर देना जानता है। यह सत्कार न राजाओं को मिलता है, और न महाराजाओं को। वह तो केवल उन्हीं लोगों को मिल सकता है, जो देश की स्वाधीनता के लिये अपने तन मन धन को स्वाहा कर देते हैं। भारतवर्ष आज भी ऊंचे आदर्शवाद और अदम्य साहस का मान कर सकता है, और यही वर्तमान घने अन्धकार में प्रकाश की एकमात्र रेखा है।

इस वर्ष एक विशेष बात यह हुई कि आपका जो आत्मचरित प्रकाशित हुआ, यह आत्मचरित आपने जेल में लिखा था। यह केवल आत्मचरित न होकर, अपने जीवनकाल की राजनीतिक घटनाओं का एक गहरा निरीक्षण भी है। उसे हम यदि १९३६ का सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ कहें, तो अनुचित न होगा। भाषा में ओज और प्रवाह है, भावों में स्फूर्ति और प्रौढ़ता है। घटनाओं और व्यक्तियों पर जो सम्मतियां प्रकाशित की गई हैं, वह ऐसी मार्मिक हैं कि उनसे किसी अंश में सहमत न होते हुये भी आप उन का सत्कार किये बिना नहीं रह सकते। प० जवाहरलालजी के भौतिक शरीर में जो आत्मा है, वह इस आत्मचरित की प्रत्येक [illegible] रही है, यही कारण है कि पुस्तक इतनी लोक-

प्रिय हुई है। वर्ष भर में इसके कई संस्करण प्रकाशित होकर बिक चुके हैं।

तीसरी बार राष्ट्रपति

आठ मास के निरन्तर प्रयत्न से प० जवाहरलालजी ने देश मे एक अद्भुत स्फूर्ति पैदा कर दी है। आज़ादी का शङ्ख बजा कर आपने सोतों को जगा दिया। जहां भीड पडी, वहां पहुचे, और जिस अग में निर्बलता दखी, उसी को सभालने का प्रयत्न किया। आठ ही महीनों म यह दशा हो गई कि लोगों का जवाहरलालजी को राष्ट्रपति समझने की आदत-सी पड गई। अब वह जवाहरलाल और राष्ट्रपति इन दो शब्दों को पर्यायवाची सा समझने लगे हैं। एक और भी बात है। रोगी का जैसा रोग हो, वैसी दवा दी जाती है। देश की दशा वैसी ही है, तो उसका उपाय भी वही होगा। देश की जो दशा १९३६ के चौथे भाग में थी, १२ वें भाग मे भी लगभग वही दशा है। कोई आक्रमणात्मक जगी कार्यक्रम हमारे सामने नहीं, महात्मा गांधी राजनीतिक सग्राम का सेनापतित्व छोड चुके हैं। देश साम्राज्यविरोधी भावनाओं से भरपूर है, धारासभाओं के चुनाव में कांग्रेस हिस्सा लेने का निश्चय कर चुकी है, जिस के लिये सब दलों का एक झण्डे के नीचे खडे रहना आवश्यक है। ऐसी दशा में देश

को ऐसे सेनापति की आवश्यकता है, जो समर्थ हो, जानदार हो, तेजस्वी हो, कांग्रेस में विद्यमान भिन्न भिन्न दलों को एक छत्र-छाया के नीचे ला सके। यह कार्य प० जवाहरलाल जी जितना अच्छा कर सकते हैं, इस समय उतना अच्छा दूसरा कोई व्यक्ति नहीं कर सकता। इस कारण, जब वर्ष के अन्त में यह प्रश्न पैदा हुआ कि १९३६ के लिये राष्ट्रपति की गद्दीपर किसे बिठाया जाय, तो देश ने बहुत लगभग सर्वसम्मति से नेहरूजी को यह सम्मान प्रदान किया।

राष्ट्रपति पद के चुनाव के लिये मैदान में तो कई नेता लाये गये, परन्तु प्राय उन सभी ने अपने नाम वापिस ले लिये। इस प्रसग मे कुछ ऐसी भी बातें होगई जो न होती तो अच्छा होता। पहले यह भ्रान्ति पैदा होगई कि प० जवाहरलालजी नये वर्ष में राष्ट्रपति नहीं रहना चाहते। उसके निवारण के लिये नेहरूजी ने एक वक्तव्य निकाला, जिसमें यह प्रकट किया कि यदि उन्हें राष्ट्रपति चुना गया, तो वह इन्कार नहीं करेंगे। उस वक्तव्य के कुछ शब्दों से यह भ्रम पैदा होगया कि आप अपने राष्ट्रपति पद के लिये चुनाव को साम्यवाद के पक्ष में देश का मत प्रदर्शन समझेंगे। इस पर देश में बहुत बचैनी सी उत्पन्न होगई, क्योंकि देश राष्ट्रपति का चुनाव केवल साम्यवाद के पक्ष पर ही नहीं करना चाहता था। देश जिस व्यक्ति से वर्षभर सब से अधिक सेवा लेना चाहता है, उसे राष्ट्रपति बनाता है। यह

चुनाव किसी एक सम्मति विशेष के कारण नहीं होता। इसमें पहली सेवायें, व्यक्तित्व और समय की आवश्यकता—इन सभी बातों का ध्यान रहता है। जब पं० जवाहरलालजी को मालूम हुआ कि उनके वक्तव्य से फिर एक युक्ति पैदा हुई है तो उन्होंने एक वक्तव्य निकाला जिससे यह स्पष्ट कर दिया कि उनका यह आशय नहीं था कि उन्हें राष्ट्रपति पद के लिये चुनना साम्यवाद का समर्थन करना है। वह यदि राष्ट्रपति चुने गये, तो उसी नीति पर कार्य करेंगे, जिस पर १९३६ में करते रहे हैं।

आप १९३६ में देश को यह सन्देश देते रहे हैं कि सब गौण भेदों को भुला कर पूर्ण स्वाधीनता के नाम पर एक हो जाओ। १९३६ में आपका यही जगीनारा रहा है, और आगामी वर्ष भी यही रहेगा।

इस वक्तव्य के निकलने पर कोई भ्रम शेष न रहा। अन्य उम्मेदवारों ने अपने नाम वापिस ले लिये और पं० जवाहरलाल-जी १९३७ के लिये निर्विरोध रूप से राष्ट्रपति चुने गये।



परिशिष्ट

पं० जवाहरलाल नेहरूका अभिभाषण *

(अभिभाषण के कुछ आवश्यक अंश)

बाद बहुत बरसों के मैं आज फिर इस जगह से आप के सामने हाजिर हुआ हूं, बहुत बरस जो कि झगडे और कशमकश और आम मुसीबत से भरे थे। हमारे लिये फिर से मिलना अच्छा है। मेरे लिये एक इतना बड़ा जमाव अपने पुराने साथियों और दोस्तों का देखना अच्छा है। हम लोग तो ऐसे मजबूत बन्धनों से एक दूसरे से बंधे हैं जो टूट नहीं सकते। मैं फिर से उस पुरानी हिम्मत की झलक को महसूस करता हूं और आपकी अजहद मेहरबानी और मुहब्बत का अनुभव करता हूं। मेरे लिये तो सब से बड़ी खुशकिस्मती यही है कि एक

* यह भाषण लखनऊ कांग्रेस के सभापति पद से दिया गया था।

बड़ी आजादी की लड़ाई में मैं आप सब लोगों के साथ एक सिपाही की हैसियत से रहा। आप लोगों को देखकर मेरी हिम्मत बढ़ती है और बल मिलता है, हालाँ कि इस मजमे में भी मुझे कुछ अकेलापन मालूम होता है। कितने ही हमारे प्यार साथी और दोस्त हमें छोड़ कर चल दिये। लड़ाई और कशमकश की तकलीफ से वे इस दुनिया में मामूली जिन्दगी के दिन पूरे नहीं कर सके। एक के बाद एक वे चले जाते हैं और हमारा दिल सूना हो जाता है और मन दुख से भर जाता है। शायद अपनी मिहनत के बाद उनको शान्ति मिलती है और यह मुनासिब भी है, क्योंकि वे इसका हक रखते थे। बहुत कुछ करने के बाद वे आराम करते हैं।

मैं परेशानी की हालत में और एक थके हुए बच्चे की तरह से भारतमाता की गोद में शान्ति की खोज में आया हूँ। यह सान्त्वना मुझे भरपूर मिली। हजारों ने प्रेम और मुहब्बत से भरे हुए हाथ मेरी तरफ बढ़ाये, करोड़ों ने अपने प्रेम का खामोश सन्देश मेरे दिल को भेजा। किस तरह से मैं आपका शुक्रिया अदा करूँ, हिन्दुस्तान के रहनेवालो, कैसे अपने दिल के गहरे भावों को शब्दों में आपके सामने रखूँ?

अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति

हम अपनी कौमी लड़ाई में मग्न थे और जो शकल उसने अख्तियार की, उस पर हमारे महान नेता और हमारे राष्ट्रीय स्व

भाव की जबरदस्त छाप थी। हमें इस बात का खयाल भी बहुत कम था कि बाहर की दुनियां मे क्या हो रहा है। लेकिन हमारी लड़ाइ उस बड़ी आजादी की लड़ाई का एक हिस्सा थी और जो ताकतें हमें हिला रही थीं ,वे दुनिया भर मे और करोड़ों लोगों को भी हिला रही थीं और उनसे तरह तरह के काम करवा रही थीं। सारा एशिया, भूमध्यसागर से लेकर जापान तक, इस्लामी पश्चिम से बौद्ध पूर्व तक हिल गया था। अफ्रीका में भी यह नई रूह दिखलाई देती थी। महायुद्ध से टूटा हुआ यूरोप अपने को सम्भालने की कोशिश कर रहा था और यूरोप से एशिया तक एक बड़े हिस्से में सोवियट मुल्क बहुत दुश्मनों का मुकाबला करके कोशिश कर रहा था कि एक नई इनसानी की आज़ादी के खयाल को और समाज की बराबरी के भाव को फैलाये। इस दुनियां भर की आजादी की लड़ाई के बहुत हिस्से थे और बहुत शक्लें थीं। और इन फर्कों को देखकर हमे गलतफहमी हो जाती थी और हम नहीं समझ सकते थे कि सब की बुनियाद एक ही है। लेकिन अगर हम इस भेद की असलियत को समझना चाहें और अपनी कौमी लड़ाई के लिये उससे मदद सीखना चाहें तो हमे पूरे दृश्य को समझने की कोशिश करनी चाहिये। अगर हम ऐसा करेंगे तो देखेंगे कि ऊपरी फरक होते हुये भी सब के बीच मे ऐसा सम्बन्ध रहा, जो अवस्थाओं के बदलने पर भी कायम रहता है। अगर हम इस अन्दरूनी सम्बन्ध को एकबार पहिचान लें तो

दुनिया की हालत समझने में हमें, बहुत आसानी होगी, और हमारे कौमी मसलों का दुनिया के मसलों में जो स्थान है वह भी हमें ठीक तौर से दिखाई देने लगेगा। जब हम इस बात को समझेंगे कि हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तान के मसले को हम बाकी दुनिया से अलग नहीं कर सकते। अगर अलग करें तो हम उन असली ताकतों को भूल जाते हैं, जोकि आजकल के इतिहास को बना रही हैं, और उनसे जो ताकत बढ़ती है उससे अपने को अलग कर देते हैं। ऐसा करने से तो हम अपने मसलों की अहमियत तक भी नहीं समझ सकते और अगर इसे न समझें तो मसलों को हल कैसे करेंगे ? हम छोटे छोटे सवालों में और झगड़ों में, जैसे कि हिन्दू मुस्लिम सवाल है, भूले भटकों की तरह रह जाते हैं और बड़े मामलों को बिलकुल भूल जाते हैं। हम अपनी ताकत को जाया करते हैं (जैसे हमारे नरम दल के भाई) कानूनी पचीदगियों में और हुकूमत के तरीकों की बहस में।

भारत और साम्यवाद

इस तरह हम देखते हैं कि आजकल की दुनिया में दो बड़े बड़े गिरोह हैं। एक तरफ साम्राज्यवाद और फासिस्टवाद और दूसरी तरफ समाजवाद और राष्ट्रवाद। कहीं कहीं ये एक दूसरे से कुछ मिलते से मालूम होते हैं और उनको एकदम अलग करना

मुश्किल है क्योंकि फासिस्टवाद और साम्राज्यवाद के देशों में आपस का विरोध है और पराधीन देशों का राष्ट्रवाद कभी कभी थोडासा फासिस्टवाद का रूप ले लेता है। लेकिन असल फर्क तो इन दोनों गिरोहों में है, और अगर हम इसे याद रखें तो दुनिया की हालत और उसमें अपना स्थान समझने में हमे आसानी होगी।

हम लोग जो आजाद हिन्दोस्तान के लिये कोशिश कर रहे हैं, कहां हैं ? जाहिर है कि हम दुनिया की आगे बढ़ने वाली उन ताकतों के साथ हैं जो साम्राज्यवाद और फासिस्टवाद के खिलाफ खड़ी हैं। हमको भारत में एक साम्राज्यवाद का यानी अंग्रेजी साम्राज्यवाद का खास मुकाबला करना है। यह सब से पुराना है और आज की दुनिया में सब से ज्यादा फैला हुआ है। पर ताक़तवर होते हुए भी वह दुनिया के साम्राज्यवाद का केवल एक अंग है और यही हिन्दुस्तान की पूरी आजादी और उसका सम्बन्ध ब्रिटिश साम्राज्य से तोड़ने के लिये आखिरी दलील है। भारत के राष्ट्रवाद में, भारत की आजादी मे और ब्रिटिश साम्राज्यवाद मे मेल की गुन्जाइश नहीं है। और अगर हम इस साम्राज्यवाद के फन्द मे फसे रहेंगे तो, हमारा नाम और हमारी हैसियत चाहे जो रहे, और ऊपर ऊपर चाहे जितनी राजनीतिक ताकत हमें मिल जाय, दरअसल हम बंधे ही रह जायगे, पीछे घसीटने वाली ताकतों से हमारा सम्बन्ध बना रहेगा और

पूंजीवाद का माली स्वार्थ हमें दबाता रहेगा, आम जनता की बरबादी इसी तरह जारी रहेगी और हमारा कोई जरूरी सामाजिक मसला हल न हो पायेगा। सच्ची राजनीतिक आजादी भी कभी न मिल सकेगी, और बडी बडी सामाजिक तबदीलियां तो हम कर ही न सकेंगे।

जाती आजादी का अभाव

एक बात पर मैं जरूर कुछ कहना चाहता हूं, क्योंकि यह ऐसी बात है जिसे मैं निहायत जरूरी समझता हू, और जिसकी मेरे दिल में बड़ी कदर है। यह यह कि हमारे मुल्क मे जाती आजादी बिलकुल ही छीन ली गयी है। जिस हकूमत को क्रिमिनल ला अमेंडमेंट ऐक्ट और ऐसे कानूनों पर भरोसा करना पडता है, जो छापाखानों और किताबों को दबाती है, जो सैकडों संगठनों को गैरकानूनी करार दे सकती है, जो बिला मुकदमा चलाये लोगों को कैदखानों में बन्द रखती है, और जो वह सब कार्रवाइयां कर सकती है जिन्हें हम अपने मुल्क में आज देख रहे हैं, उस हुकूमत को कायम रहने का कोई हक नहीं है। मैं अपने आपको ऐसी हालत के अनुकूल नहीं बना सकता। मैं इसे नाकाबिल-बरदाश्त समझता हू। तिस पर भी मैं देखता हू कि मेरे बहुत से देशवासी उससे खुश हैं। कुछ उसकी मदद भी करते हैं और कुछ को तो ऐसी आदत होगयी है कि जब ऐसे

मसले पेश होते हैं तो व आराम से बीच में बैठ जाते हैं, न इधर राय रखते हैं, न उधर। मैं अक्सर यह सोचता हू कि इन लोगों में और मेरे ऐसे ख्याल क लोगों मे किस तरह मेल हो सकता है। हम कांग्रेसवाले ऐसे सब सहयोग का स्वागत करते हैं जो भारत की आज़ादी की लडाई मे मिल सकता है। हमारा दरवाजा ऐसे लोगों के लिये बराबर खुला है जो आजादी के तरफ़दार हैं और साम्राज्यवाद के विरोधी हैं। लेकिन हम साम्राज्यवाद के दोस्तों और दमन क तरफदारों को नहीं चाहत और न हम उन्हीं को साथ ले सकते हैं जो जाती आज़ादी को दबाने में ब्रिटिश हुकूमत का साथ देते हैं। हमारा इनका रास्ता अलग अलग है। हम एक दूसर के विरोधी हैं।

आम लोगों का सहयोग

हमारे लिये खास मामला यह है कि आजादी की लडाई में हम किस तरह से मुल्क मे साम्राज्यवाद की मुखालिफ़ सब ताकतों को इकट्ठा कर सकते हैं, और हम किस तरह से साधारण जनता को और मध्य श्रेणी के बडे हिस्से को, जो आजादी चाहता है, एक साथ लाकर आज़ादी की लडाई के लिये खडा कर सकते हैं। कभी कभी मिलकर मुकाबिला करने की बात होती है, लेकिन जहां तक मैं समझ सकता हू इसका मतलब यही है कि ऊपर के लोगों में किसी तरह का मेल कर लिया

जाय जिससे मुमकिन है कि अवाम को नुकसान पहुंचे। कांग्रेस का ऐसा ख्याल कभी भी नहीं हो सकता और अगर वह इसका साथ दे तो वह उन लोगों को धोका देगी जिनके फायदे के लिये लड़ने का उसका दावा है, और फिर उसके जिन्दा रहने की ही कोई वजह न रह जायगी। सब के मिलकर मुकाबिला करने का मतलब तो यही हो सकता है कि साम्राज्यवाद की मुखालिफत हर तरह से की जाय और इसमें ताकत पाने के लिये किसानों और मजदूरों का अमली तौर से साथ देना लाजिमी है।

शायद आप लोगों को ताज्जुब हो रहा हो कि मैंने इतने तफसील से राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों की बुनियाद का जिक्र क्यों किया है और अभीतक उन मसलों की चर्चा भी नहीं की है जो आपके दिमाग में हैं। मुमकिन है कि आप लोग उकता गये हों। पर मुझे यकीन है कि अपने मसलों को देखने का ठीक तरीका यही है कि हम उन्हें दुनियां के पर्दे पर ठीक स्थान पर रख कर देखें। मेरा यही यकीन है कि दुनिया की घटनाओं का आपस में एक बहुत बडा नजदीकी ताल्लुक है। हमारे राष्ट्र का मसला दुनिया के पूंजीवाद—साम्राज्यवाद के मसले का केवल एक अंग है। अगर हम हरएक घटना को एक दूसरी से अलग कर देखेंगे, और उनके बीच के सम्बन्ध को नहीं। समझेंगे, तो हम गलत राय कायम करेंगे।

समाजवाद क्या ?

मुझको यकीन है कि दुनियां के मसलों और हिन्दुस्तान के मसलों को हल करने का सिर्फ एक तरीका है और वह समाजवाद है। जब मैं इस लफ्ज को इस्तमाल करता हूँ तो उस इन्सान परस्ती के सन्दिग्ध मानी में नहीं लेकिन वैज्ञानिक और आर्थिक मानी मे इस्तेमाल करता हू। साथ ही समाजवाद एक आर्थिक सिद्धान्त से ज्यादा मानी रखता है। वह जिन्दगी का एक बुनियादी उसूल है और इस वजह से भी वह मुझे अपनी तरफ खींचता है। सिवा समाजवाद के मैं कोई दूसरा तरीका नहीं देखता जिससे अपने हिन्दुस्तानी भाइयों की गरीबी, गजब की बेकारी, गिरी हुई हालत और गुलामी हम दूर कर सकते हैं।

म नहीं कह सकता कि यह नयी व्यवस्था हिन्दुस्तान में कब और कैसे आवेगी। म सोचता हू कि हर मुल्क अपने तरीके पर और ऐसे रूप में उसे अपनावेगा जो उसकी कौमी ज़हनियत के मुताबिक़ हो। पर उस व्यवस्था के बुनियादी उसूलों को क़ायम रखना होगा और सारी दुनिया की उस व्यापक व्यवस्था के साथ जुटाये रखना होगा जो मौजूदा अन्तरी और बदनजमी की हालत से पैदा होगी।

इस तरह समाजवाद मेरे लिये सिर्फ एक आर्थिक सिद्धान्त की बात नहीं है जिसे मैं पसन्द करता हू, बल्कि वह मेरे लिये

एक जीवित धर्म है जो मेरे दिमाग़ और दिल की चीज है। मैं हिन्दुस्तान की आजादी को हासिल करने के लिये कोशिश इस लिये करता हू, कि मेरे भीतर का कौमी जजबा विदेशी हुकूमत को बरदाश्त नहीं कर सकता। इससे भी ज़्यादा मैं उसके लिये कोशिश इस वजह से करता हू कि सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में रद्दोबदल होने के लिये यह एक जरूरी कदम है। मैं चाहता हू कि कांग्रेस समाजवादी संस्था हो जावे और दुनिया की उन ताकतों के साथ हाथ मिलाकर आगे बढे जो नयी तहजीब के लिये काम कर रही हैं। लेकिन यह भी महसूस करता हू कि आज कांग्रेस की जैसी बनावट है उसमे ज्यादातर लोग इतनी दूर जाने के लिये तैयार नहीं होंगे। हम एक राष्ट्रीय संस्था के लोग हैं और हम राष्ट्रीय सतह पर ही सोचते तथा काम करते हैं।

गो मैं इस मुल्क में समाजवाद को बढ़ती दिल से चाहता हू, पर मेरी यह इच्छा नहीं है कि मैं कांग्रेस में इस सवाल को जबर्दस्ती उठाकर अपनी आजादी की लड़ाई के रास्ते में तरद्दुद पैदा करू। मैं अपनी सारी ताक़त से उन सब लोगों के साथ खुशी खुशी शिरकत करूंगा जो आजादी के लिये काम कर रहे हैं, फिर चाहे वे समाजवादी सिद्धान्त से इख्तिलाफ ही क्यों न रखते हों।

खद्दर

कांग्रेस की मौजूदा विचारधारा में समाजवाद किस प्रकार सगत है ? मैं समझता हू कि वह उससे असगत है। मैं मुल्क मे कल-कारखानों की तेजी से बढती होने में विश्वास करता हू, और मै समझता हू कि लोगों की रहन सहन को ऊंचा करने तथा ग़रीबी से लडने का सिर्फ यही एक तरीका है। फिर भी मैंने आज से पहले कांग्रेस के खादी के प्रोग्राम मे दिली शिरकत की है और मैं उम्मीद करता हू कि आगे भी मैं ऐसा ही करूँगा, क्योंकि मैं विश्वास करता हू कि हमारी मौजूदा माली हालत में खादी और देहाती उद्योग धन्धों का एक खास स्थान है। उनकी एक सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक कीमत है जिसे नापना बहुत मुश्किल है पर वह उन लोगों की निगाह मे साफ है जिन्होंने उनके असर को देखा है।

नया शासन-विधान

अब मैं उस सवाल पर आता हू जो शायद आप लोगों के दिमाग़ मे भरा हुआ है। वह है ब्रिटिश पार्लमेण्ट का बनाया हुआ हमारा शासन-विधान और उसके सम्बन्ध में हमारी नीति। यह एक्ट कांग्रेस के पिछले इजलास के बाद बना है, फिर भी उसी समय सफेद कागज के रूप में हमें इसका कुछ जायका मिल गया था। उसकी धाराओं के सम्बन्ध में कांग्रेस के सभापति के

मह न् पद पर आसीन हमारे पूर्ववर्ती ने अपने प्रेसिडेन्शल एड्रेस में जो उत्तम विवचना की है उससे बढ़िया आलोचना मैंने नहीं देखी है। कांग्रेस ने उस प्रस्तावित विधान को ठुकरा दिया और उससे कुछ भी ताल्लुक न रखना तय किया। नया एक्ट, जैसा कि सब को मालूम है सफेद कागज से भी गया बीता है और हमारे नरम से नरम तथा फूँक फूँक कर कदम रखने वाले राज-नीतिज्ञों तक ने उसकी निन्दा की है। अत जब हमने सफेद कागज को ही ठुकरा दिया है तब गुलामी के इस नये परवाने से हमारा क्या सम्बन्ध है जो साम्राज्यशाही के बन्धनों को मजबूत करने और हमारी गरीब जनता को और चूसते रहने के लिये बना है? थोडी देर क लिये अगर हम उसकी बातों को भूल भी जाय तो क्या हम उस अपमान और उस चोट को भी भूल सकते हैं जो उसके साथ साथ लगी है? हमारी इच्छाओं का बुरी तरह ठुकराया जाना, नागरिकों की आजादी का कुचला जाना और वह फैला हुआ दमन, जो हमारे सिर पर पडा, क्या भुलाया जा सकता ? अगर व हमे इस बेइज्जती क साथ स्वर्ग का दान भी देते तो क्या हम उसे अपनी कौमी इज्जत और स्वाभिमान के विरुद्ध समझ कर ठुकरा न देते ? तब इसकी क्या बिसात है ?

इस विधान की ओर हमारा भाव सिर्फ एक ही हो सकता है और वह है हमेशा बिना किसी कसर के विरोध करते रहना और

चुनाव में भाग

चुनावों में हिस्सा लेने की हमारी दूसरी खास वजह यह होगी कि हम कांग्रेस के सन्देश को लाखों वोटरों और करोड़ों ग़ैर-वोटरों तक पहुचा दें और उन्हें अपने प्रोग्राम और नीति को बता दें ताकि जनता यह समझ ले कि हम न केवल उनके लिये खड़े हैं बल्कि हम उन्हीं मे से हैं और उनके सामाजिक तथा आर्थिक बोझों को हटाने की उनकी कोशिशों में उनके साथ सहयोग करना चाहते हैं। हमारी अपील और हमारे सन्देश केवल वोटरों तक ही परिमित न होंगे, क्योंकि हमे यह याद रखना चाहिये कि हमारे करोड़ों भाइयों को वोट देने का हक नहीं है और उनको ही हमारी मदद की सबसे ज्यादा ज़रूरत है, क्योंकि वे हमारे समाज की सबसे नीचे की सतह पर हैं और वे शोषण से सब से ज्यादा तकलीफ पा रहे हैं।

पद-ग्रहण का प्रश्न

स्वाभिमान की बात तो रहने दीजिये, यह मामूली समझ की भी बात है कि नये क़ानून के अनुसार सरकारी पद ग्रहण करने से हमारा नुकसान ज्यादा है, फ़ायदा कम। हम उससे ज्यादा फ़ायदा उठा नहीं सकते। अगर ऐसा है तो उस क़ानून के खिलाफ जो टीका की जाती है वही ग़लत ठहरेगी, पर हम जानते हैं कि वह ग़लत नहीं है, ठीक है। जिन बड़ी चीज़ों के

लिये हम कोशिश कर रहे हैं, जो महान् उद्देश्य हमारे सामने हैं वे फीके पड़ जायगे और हमारा सारा ध्यान छोटी मोटी बातों में लग जायगा तथा समझौतों और मज़हबी झगड़ों के जगल में हम अपने आपको खो बैठेंगे, और जिस भ्रम में हम फंसेंगे वही सारे मुल्क में छा जायगा। अगर कौंसिलों में हमारा बहुमत हो, और सिर्फ़ उसी हालत में वज़ारत लेने का सवाल खड़ा हो सकता है, तो सारी अवस्था ही हमारी मुट्ठी में आ जायगी और हम पीछे हटने वालों और साम्राज्यवादियों को उससे फ़ायदा उठाने से रोक सकेंगे। पद-ग्रहण से हमारी असली ताक़त नहीं बढ़ेगी बल्कि वह ऐसी बहुत सी बातों के लिये जिन्हें हम कतई नापसन्द करते हैं, जिम्मेदार बनाकर हमें कमज़ोर जरूर कर देगी।

और अगर हमारा अल्पमत हो तो सरकारी पद लेने का सवाल ही पैदा नहीं होता। पर हो सकता है कि हम बहुमत के पास पास हों और दीगर लोगों और अन्य समूहों के सहयोग से पद ग्रहण कर सकते हों। लोगों की स्वाधीनता या आर्थिक या अन्य प्रकार की मांगों के ख़ास ख़ास मौक़े पर हम औरों का हाथ बंटावें। यह बात बुरी नहीं है बशर्तेकि ऐसा करना हमारे सिद्धान्तों के ख़िलाफ़ न हो। पर औरों के भरोसे सरकारी पद ग्रहण करने से बढ़कर ख़तरनाक और नुक्सानदेह दूसरी चन्द

ही बातों का ख्याल मैं कर सकता हू। यह हालत तो नाकाबिल बरदाश्त हो जायगी।

इससे मेरी यह कतई राय है कि कांग्रेस के लिये सरगर्मी पद ग्रहण क पक्ष में राय देना, यहां तक कि इसक बार मे ज़रा भी इधर उधर करना, बडी भारी भूल होगी। हम एक ऐसे गढे में गिरेंगे जिसमे निकलना मुश्किल हो जायगा। व्यावहारिक राजनीति, कांग्रेस की परम्परा तथा वह मनोवृत्ति जिसे लोगों मे पैदा करने की कोशिश हम करते आये हैं, यह सब इसक विरुद्ध हैं। मनोविज्ञान की दृष्टि से, ऐसी रहनुमाई का नतीजा बहुत ही नुक्सानदेह होगा। अगर हम चाहते हैं--और जरूर चाहते हैं कि मुल्क में क्रान्ति हो तो हमे लोगों में क्रान्ति की मनोवृत्ति पैदा करनी होगी, और जो जो बात इसमें बाधक हैं वह हमारे पक्ष के लिये भी घातक हैं।

साम्प्रदायिक निर्णय

शासन विधान क सम्बन्ध में एक और बात है जिस पर बडी बहस छिड गइ है। यह साम्प्रदायिक निर्णय है। बहुतों ने इसकी निन्दा जोरों से की है, और मैं समझता हू कि ठीक की है। शायद ही किसी ने इसक लिये अच्छी बात कही हो। फिर भी इस बारे में मेरी अपनी नज़र औरों से कुछ अलग है। यह इस या उस फिरके को क्या देता है, इससे मेरा कोई सरो

कार नहीं है। मैं उसके बुनियादी खयालात को देखता हूं। वह हिन्दुस्तान को, खासकर मज़हबी बुनियाद पर, कई अलग अलग टुकडों में बांटता है और इस तरह लोकतन्त्र और आर्थिक नीति के प्रचार को बहुत कठिन बनाता है। सच तो यह है कि साम्प्रदायिक निर्णय और लोकतन्त्र एक साथ नहीं रह सकते। मानना पडता है कि आजकल की हालत में, और जबतक हमारी राजनीति पर मध्यवर्ग का,प्रभुत्व है, तबतक साम्प्रदायिकता जड से उखाडी नहीं जा सकती। पर मुस्लिम या सिख मित्रों के लिये कुछ रियायत कर देना एक बात है, और इस बुराई को दूसरे बहुत से फिर्कों मे फैलाना और इस तरह निर्वाचन-क्षेत्रों और कौंसिलों को कई खानों मे बांट डालना बिलकुल दूसरी और इससे बहुत ही ज्यादा खतरनाक बात है। यदि लोकतन्त्र सफल होना है तो फिर्काना बन्दोबस्त का नाश होना ही चाहिये, और नाश होगा इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है। पर वह उन उपायों से न जायगा जो इसके लडाके विरोधियों ने अपनाये हैं। इन उपायों से तो उस निर्णय के बने रहने में मदद मिलती है, क्योंकि इससे एक ऐसी हालत पैदा होती है जिसमे आपस का मेल हो नहीं सकता। मेरे मत से इस सवाल का सच्चा हल तो तब होगा जब सब समूहों और मज़हबों को एक-से लागू होने-वाले, मज़हबी और फिर्काना सीमाओं को तोड़ने वाले आर्थिक प्रश्न जनता के सामने उपस्थित होंगे।

रूस से सबक

रूस के सम्बन्ध में वेब्स साहबान की बनाई एक नई किताब निकली है जो बहुत अच्छी और मन पर गहरा असर डालने वाली है। उसमें यह पढ़ कर बड़ी दिलचस्पी मालूम होती है कि किस तरह सारा सोवियट शासन विधान लोकतन्त्र के व्यापक और जीवित आधार पर बनाया गया है। रूस ऐसा देश नहीं माना जाता जहाँ पश्चिम के ढंग का लोकतन्त्र चालू हो, फिर भी सर्व-साधारण में लोकतन्त्र का असली रूप जितनी ज्यादा मात्रा में वहाँ मौजूद है, उतना शायद ही और किसी देश में हो। वहाँ के छः लाख गाँवों और शहरों में लोकतन्त्र का जाल सा फैला हुआ है — हरएक की अपनी सोवियट (पंचायत) है, जिसमें हमेशा बहस मुबाहिसे होते रहते हैं, जो नीति निर्धारित करने में मदद देते हैं और जो ऊपर की कमेटियों के लिये प्रतिनिधि चुना करते हैं। नागरिकों की इस संस्था में १८ वर्ष से ज्यादा उम्र की सारी आबादी शामिल रहती है। एक और बड़ी संख्या माल तैयार करने या उत्पन्न करने वालों की और एक तीसरी संख्या जो इतनी ही बड़ी है, माल की खपत करने वालों की है। इस तरह वहाँ करोड़ों स्त्री पुरुष बराबर सार्वजनिक मामलों पर बहस करते और देश के शासन में खुले आम हिस्सा लेते रहते हैं। संसार के इतिहास में लोकतन्त्र के तरीकों का ऐसा व्यावहारिक प्रयोग और कहीं नहीं हुआ।

इसमे शक नहीं कि यह हमारे बूते के बाहर की बात है। इस के लिये हमारे राजनीतिक और आर्थिक ढांचे मे ही नहीं, दूसरी बातों में भी रद्दोबदल की ज़रूरत है, तभी हम इसकी आज़माइश कर सकते हैं। फिर भी हम अपनी मौजूदा हालत में रूस की मिसाल से फायदा उठा सकते हैं और अपनी थोडी सी ताकत के मुताबिक कांग्रेस की छोटी संस्था मे लोकतन्त्र के विकास की कोशिश कर सकते हैं और नीचे की कमेटी को जानदार बना सकते हैं।

जनता के साथ सम्बन्ध बढ़ाने का एक और उपाय हमारे लिये यह है कि हम माल पैदा करने वालों का सङ्गठन करें और फिर कांग्रेस के साथ उनकी सस्थाओं का ताल्लुक करा दें या दोनों में सहयोग कराने की कोशिश करें।

लड़ाई के प्रोग्राम की चर्चा

लड़ाई के प्रोग्राम की चर्चा भी इधर होती रही है। इसका ठीक ठीक मतलब क्या है, मैं कह नहीं सकता। अगर राष्ट्रीय पैमाने पर सीधी लड़ाई या सत्याग्रह छेड़ने से मतलब हो तो मैं कहूगा कि निकट भविष्य में मुझे इसकी कोई उम्मीद नहीं मालूम होती। जबतक हम किसी बड़े काम के लिये तैयार नहीं हो जाते, तब तक हमें कोरी डींग न हांकनी चाहिये। हमारा काम इस समय यह है कि हम अपनी ग़लतियों को सुधारें,

अपने चन्द भाइयों क दिमाग़ से अपने को हमेशा हारा हुआ समझने की मनोवृत्ति दूर करें और अपनी संस्था का ऐसा संगठन करें जिसमें जनता से उनका ज़्यादा निकट का सम्बन्ध स्थापित हो और हम जनता मे काम कर सकें। वह वक़्त जल्द आ सकता है —शायद जितना हम समझते हैं उससे भी जल्द— जब हमारा इम्तिहान लिया जाय। आइये, हम लोग उसकी तैयारी करें। सत्याग्रह या और कोई ऐसा आन्दोलन जब हम चाहें तब अपनी इच्छा के मुताबिक शुरू या बन्द कर दने की चीज़ नहीं है, वह बहुत-सी बातों पर मुनहसर है, जिनमें से कुछ हमारे काबू के बाहर हैं, पर इन दिनों में जब चारों ओर क्रान्तियां हो रही हैं और दुनिया में बार बार संकट आ रहा है, घटनाएं अक्सर हमारे विचारों क बनिस्बत ज़्यादा तेजी से आगे बढ़ रही हैं। हमे मौक़ों की कमी न पडेगी।

भावी युद्ध और भारत

दुनियां में लड़ाई छिड़न की आशंका फैल रही है और तरह तरह की ख़बरें उडाई जा रही हैं। इस ख़ौफ़नाक खेल म हमारी जगह कहां है? दुनियां पर यह जो आफ़त आने वाली है, उसमें हम कौन सा हिस्सा लेना चाहेंगे? हम कह नहीं सकते। जो हो, साम्राज्यवादियों का मतलब पूरा करने के लिये हमें अपने आपको उनके हाथ की कठपुतली न बनने दना चाहिये। हम लड़ाई में

शरीक होना चाहते हैं या नहीं, यह कहने का हक हमें हासिल होना चाहिये और बिना हमारी मंज़ूरी के हमारी तरफ से किसी तरह का सहयोग नहीं होना चाहिये। जब वह वक्त आयगा तब शायद हमे इस मामले में कुछ कहने का मौका न मिले, इसलिये कांग्रेस को अभी से साफ साफ लफ्ज़ों में कह देना चाहिये कि वह किसी भी साम्राज्यवादी जंग में भारत के शरीक होने के खिलाफ है। हम ऐसे हरएक लडाई को साम्राज्यवादी जंग कहेंगे, जो किसी साम्राज्यवादी मुल्क की तरफ से छेड़ा जाय, फिर चाहे उसका मंशा कुछ भी क्यों न बताया गया हो। इस वजह से हमें ऐसी लड़ाई से दूर ही रहना चाहिये और हिन्दुस्तानियों की जान व हिन्दुस्तान का पैसा उसमे बरबाद न करने देना चाहिये।

हमारा कर्त्तव्य

लेकिन कोई भी नेता चाहे वह कितना ही बड़ा क्यों न हो, अकेले सारा बोझ नहीं उठा सकता। हम सबको अपनी ताक़त और लियाक़त के मुताबिक इसमे हिस्सा बटाना चाहिये और असहाय होकर किसी दूसरे के भरोसे नहीं बैठ रहना चाहिये कि वह हमारे लिये जादू कर देगा। नेता आते हैं और जाते हैं, हमारे बहुत से प्रिय कप्तान और साथी हमें जल्दी ही छोड़कर चले गये, लेकिन हिन्दोस्तान और उसकी आज़ादी की लड़ाई बराबर

चली जा रही है। यह मुमकिन है कि हम में से बहुतों को और तकलीफ सहनी हो या मर जाना हो ताकि हिन्दुस्तान जिन्दा रहे और आज़ाद हो। सम्भव है कि अब भी हमारा मंजिले मक सूद हम से दूर हो और हम खुशी खुशी अब भी रेगिस्तानों के बीच से सफर करना पड़े, लेकिन हमारे दिलों से हमारी वह अमर आशा कौन छीन सकता है, जो अबतक बावजूद फांसी के तख्त और असीम तकलीफों और दुखों के बाद भी बची हुई है? हिन्दुस्तान के उस जज़बे को कुचलने का साहस कौन करेगा, जो इतने बलिदानों के बाद बार बार जन्म लेता रहा है?

